सहज-वाणी

भाग ३

उत्तरायण महोत्सव १४-१-७६

ॐ आनन्द! ॐ आनन्द!! ॐ आनन्द!!!

"जिसको जानने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता, जिसको पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रहता, जिस सुख से अधिक कोई सुख नहीं और जिस लाभ से अधिक कोई लाभ नहीं, उस आत्मलाभ को प्राप्त करने में देर क्यों करते हो प्यारे ?"

परमपुज्य संत श्री आशारामजी महाराज.

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम को गुरु श्रीवशिष्ठजी महाराज का अमृतोपदेशः–

हे रामजी ! जिनका यह अन्त का जन्म होता है उनमें निर्मल गुण जो वेद ने कहे हैं अर्थात मैत्री, सौम्यता मुक्तता, ज्ञातव्यता और आर्यता प्रवेश करते हैं । सब जीवों पर दया करना मैत्री है, हृदय में सदा समताभाव रहना और कोई क्षोभ न उठना मुक्तता कहलाता है । सदा प्रसन्न रहना सौम्यता है, यथाशास्त्र आचार करना आर्यता है और ज्ञान का नाम ज्ञातव्यता है । ब्रह्मज्ञानी सब कर्मों को करता है परन्तु उसके हृदय में लाभ अलाभ का राग–द्वेष नहीं होता और सर्वदाकाल समभाव रहता है । वह न तोषवान होता है और न ही शोकवान । जैसे सूर्य के उदय होते ही तम नष्ट हो जाता है वैसे ही आत्मभाव से राग–द्वेष नष्ट हो जाते हैं और सब गुण सिद्धता को प्राप्त होते हैं । जैसे शरत्काल का आकाश शुद्ध होता है वैसे ही वह कोमल और सुन्दर होता है और उसका आचार मधुर होता है । सब जीव उसके आचार की वांछा करते हैं और उसको देखकर प्रसन्न हो जाते हैं । जैसे मेघ की ध्वनि से मयुर आ प्रवेश करते हैं वैसे ही उस पुरुष में सब गुण आ प्रवेश करते हैं और गुणों से पूर्ण होकर वह गुरु की शरण में जाता है । तब वह उसे विवेक का उपदेश करता है और उस विवेक से वह परमपद में स्थिर होता है । ....योगवाशिष्ठ

प्रकाशक

श्री योगवेदान्त सेवा समिति,

मोटेरा आश्रम साबरमती, अहमदाबाद ।

प्रकाशन तिथि
१–४–१९७६
चैत्र सुद २. (चेटी चंड)

मूल्य—७० पैसे
प्रथम आवृति
प्रतियाँ–३०००

उत्तरायण महोत्सव

ॐ १४-१-१९७६

दोपहर ११-३० बजे

साबरमती नदी के किनारे आज आश्रम में बहुत चहल पहल है । बहुत दिनों से जिसकी इन्तजारी थी वही उत्तरायण महोत्सव आज आश्रम में मनाया जा रहा है । अजमेर, आगरा, कानपुर और देशके दूर दूर के भागों से ६–७ हजार नर नारी आश्रम में आए हुए हैं । जिधर देखो उधर लोग ही लोग दिखाई दे रहे हैं । अभी थोड़ीदेर पूर्व गायत्री मंत्र के साथ उत्सव का शुभांरभ हवन कुण्ड में आहुतियाँ देकर हुआ है । स्वामीजी की कुटिया के दोनों तरफ के खुले प्रांगण को तम्बू लगाकर ढांक दिया गया है । उसके नीचे लोग बैठे हैं, पर वह पर्याप्त नहीं है और उसके बाहर भी काफी नर नारी बैंठे हुऐ हैं । तम्बू में ऊपर की तरफ लगी हुई बिल्वपत्र एवं रंगबिरंगी झण्डियों की कतार कभी कभी–हवा के झकोरों से फड़–फड़ा रही है । जगह जगह बल्लियों के सहारे वेदवाक्य युक्त तख्तियाँ लगी हुई हैं जिनको लोग खडे रहकर पढ़ते जाते हैं ।

प्रांगण में एक कोने में 'नशा करने से क्या हानियाँ होती है' यह दर्शाने केलिये विभिन्न प्रकार के चित्रों की प्रदर्शनी भी लगी हुइ है । एक कोने में दो बडे पाटों पर विभिन्न प्रकार का उद्बोधक साहित्य भी रखा हुआ है । अपनी अपनी पसन्द के

अनुसार लोग उसमें से पुस्तकें एवं चित्र आदि खरीद रहे हैं। एक तरफ पानी पीने की भी बड़ी अच्छी सुव्यवस्था की हुई है।

आश्रम के दरवाजे से थोड़ी दूर व्यवस्था के अनुसार बहुत से वाहन खड़े हैं। इधर उधर लोगों की सहायता के लिए बिल्ले लगे हुए सेवाधारी दौड़ते–चलते नजर आ रहे हैं। उनकी फुर्ति से कोई भी यह सहज में अन्दाज लगा सकता है कि उनके कार्य के पीछे कोई दिव्य प्रेरणा कार्य कर रही है।

समूचे वातावरण में एक मनमोहक सुगंध व्याप्त है। समय हो रहा है, अतः सभी लोग मंच के सामने बैठते जा रहे हैं। मंच पर अपने आसन पर पूज्य स्वामीजी अभी आकर विराजमान हुए हैं। उनके दाहिनी तरफ गुजरात के निर्माण विभाग (बांधकाम खाता) के मंत्री श्री मोतीभाई चौधरी और नशा बन्दी विभाग के मन्त्री श्रीहरिसिंह चावड़ा बैठे हुए हैं। मंच के पास एवं थोडी दूर गले में कैमरा लटकाए तीन कैमरा मेन घूमते हुए ऐसे नजर आ रहे हैं मानो इस आध्यात्मिक पवित्र मेले के चित्र लेने की स्पर्धा कर रहे हो।

मंच के पास से साबरमती नदी का दृष्य साफ नजर आ रहा है। उसमें होकर अभी भी काफी लोग आश्रम में प्रवेश कर रहे हैं। नदी के परले किनारे से लेकर आश्रम तक नदी के अन्दर लोगों के झुण्ड के झुण्ड आते नजर आ रहे हैं।

अब गुजरात के भूतपूर्व महसुल मन्त्री श्री कृष्ण भाई चौधरी

जो स्वामीजी के अनन्य भक्तों में से हैं, माईक के सम्मुख खडे होकर बोलना प्रारम्भ करते हैं–

कृष्णभाई– परम पूज्य स्वामी जी के बारे में बोलना सूर्य को दीपक दिखाने के बराबर है। पूज्य स्वामीजी का झुकाव बचपन से ही आध्यात्मिकता की ओर था। अल्पायु में ही आप सभी सुख होते हुए भी घर त्याग कर आबू एवं हिमालय में चले गए थे। वहाँ ७–८ बर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् आपने अपना ईष्ट प्राप्त किया और लोक कल्याण के लिये पुनः समाज में पधारे हैं। हम सबका सौभाग्य है कि यहाँ साबरमती नदी के किनारे आश्रम में हम आपके दर्शन एवं सत्संग का लाभ उठा पाते हैं।

अब मैं पूज्य स्वामीजी के चरणों में निवेदन करता हूँ कि आप अपने अमृत वचनों से हमें लाभान्वित करें।

एक स्वयंसेवक माइक लेकर स्वामीजी के सामने रखता है। स्वामीजी थोडी देर परम पवित्र प्रणव एवं हरि ॐ का जाप एवं ध्यान कराते हैं, फिर अपनी मधुर वाणी में बोलना प्रारम्भ करते हैं–

स्वामीजी–आज से सूर्य का रथ उत्तरायण की तरफ चलेगा। इस दिन का बडा महत्व है। भीष्म पितामह इसी दिन के इन्तजार में बाणों की शय्या पर रणभूमि में ५८ दिन तक लेटे रहे थे। यह दिन आने पर उन्होंने योगबल से अपना शरीर छोडा था।

योग क्या है? पातंजलि योग दर्शन के अनुसार 'योगः चित्तवृत्ति निरोध।' योग से चित्त की वृत्तियों का, संकल्पों का

नियन्त्रण होता है। योग यानि भक्त और भगवान का मेल। योग से चित्त की वृत्तियाँ निरूद्ध हो जायगी और आत्मसाक्षात्कार हो जायगा। हमारे प्राचीन भारत के महान ऋषि मुनियों ने यह योग का विज्ञान समाज को दिया है।

आज भौतिक क्षेत्र में संसार बहुत आगे बढ गया है। मनुष्य विज्ञान के बल से हवा में उड़ता है, पानी में सागर की गहराइयाँ नापता है और यहाँ तक कि आज तो चन्द्रमा पर भी पहुँच गया है। वहाँ के भी मिट्टी पत्थर पृथ्वी पर लाता है। पर उसे स्वयं का पता नहीं कि स्वयं कहाँ पर खड़ा है? कितने ही भौतिक साधन जुटा लिये है उसने, परन्तु उसे शान्ति नहीं है। हम आज रूस में क्या हुआ, अमेरिका में क्या हुआ, जापान में क्या हुआ और भी न जाने कहाँ कहाँ की खबरें सुनकर अपने मस्तिष्क में एकत्रित करते रहते है, पर हमें अपना ख्याल नहीं है कि हम कहाँ जा रहे हैं। हम भी नर्मदा किनारे झोपडी में रहने वाले मौलवी से कम नहीं हैं।

नर्मदा के किनारे एक झोंपडी में एक मौलवी साहब अपने परिवार सहित रहते थे। उनकी झौंपडी बरसात में सदैव टपकती रहती थी। हर बार बरसात में वे दस बारह बार झोपडी की छत ठीक करते थे, पर नीचे उतरते समय पैर रखने की असावधानी से और कुछ तरकीब की कमी से छत में कोई न कोई कोर कसर रह ही जाती थी, जिससे छत से पानी का टपकना बन्द

नहीं हो पाता था। कई बार उन्होंने झोपड़ी को ठीक से बाँधनेका प्रयास किया, पर असफल हो रहे। इससे उनकी मौलवायिन ने सोचा कि मौलवी साहब झोपडी तो ठीक नहीं कर सकते गाँव के लोगों के भूतवूत कैसे उतारते होंगे? इतने में एक ग्राहक आया और मौलवी साहब को अपने घर किसी को भूत लगा था, वह उतारने के लिये ले गया। मौलवायिन छुप कर देखने के लिये वहाँ पहुँच गई। मौलवी साहब ने वहाँ जाकर धूप आदि किया और भूत लगे व्यक्ति के चारों ओर यह कहकर परिक्रमा करने लगे—आकाश बाँधू—पाताल बाँधू, जल बाँधू—थल बाँधू, पृथ्वी बाँधू—हवा बाँधू। एक चक्कर लगाया, फिर दूसरा चक्कर भी यही कहकर लगाया और तीसरा चक्कर यही कहकर लगाने ही वाले थे कि मौलवायिन आगे आई और एक सोटा उनकी कमर पर लगाकर बोली, "अपनी झोपडी तो तुमसे बांधी नहीं जाती और यहाँ आकर जल थल और आकाश बांधने की बातें करते हो!"

जोर से सब हंस पडते हैं।

स्वामीजी (हंसी रुकने पर)--हम भी उन मौलवी साहब के निकट के भाई हैं। हमने विज्ञान की बहुत प्रगति कर ली हैं। उसके सहारे हम चन्द्रमा पर जाते हैं, आकाश और पृथ्वी बाँधते हैं, पर अपनी स्वयं की झोपड़ी नहीं बाँधी तो सब बेकार है। रोम के सीजर ने बहुत सारी पृथ्वी बांधी थी। युनान के सिकन्दर ने भी बहुत सारी पृथ्वी बाँधी थी। परन्तु उसे भी शांति थी क्या? विश्व को विजय करने के लिये निकलने वाला सिकन्दर भी भारत

में एक लंगोटी धारी फकीर के आगे अपना शीश झुकाकर कहता है–आपमें ऐसा क्या है कि बिल्कुल न होते हुए भी बहुत कुछ लगता है। आपको देखकर मुझे तृप्ति नहीं होती।

सिकन्दर के पास क्या कमी थी ! अथाह वैभव था संसार का उसके पास, फिर भी उसे शांति नहीं थी और फकीर के पास संसार का वह वैभव नजर नहीं आ रहा था फिर भी वह उसे कहता है, "आप के पास क्या है कि मुझे बहुत शांति मिलती है।"

यह योग का चमत्कार है। हमने भौतिकता को महत्व नहीं दिया। हमने भोग को महत्व नहीं दिया। हमने योग को महत्व दिया। मनुष्य का मन बहुत ही नाजुक है। उसे इधर उधर के बीती हुई बातों के विचार आकर चंचल बना देते हैं और हम सुखी दुखी होते हैं। हममें से कई कितने धार्मिक होते हैं, फिर भी उनके मन की अशांति जाती नहीं। क्योंकि तत्वदर्शी महापुरूषों के इशारों को हम जान नहीं पाते। यदि भली प्रकार जानलें तो शांति तो अपने कदमों में है। हम महापुरूषों का आदर करते हैं, उनकी वाणी का आदर करते हैं, परन्तु लक्ष्यार्थ नहीं लेते, इसीलिए सुखी दुखी होते हैं। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु इन पांच चीजों से बना है। इन पांच में से एक भी तत्व पर हमारा अधिकार नहीं है, एक भी हमारा नहीं है। फिर भी हम इन पांचों भूतों से बने पुतले को अपना मान लेते हैं। इन पांचों से जो बना है वह इन्हीं में पुनः विलीन होने के लिए बना है। गुलाब का फूल भी इन्हीं पांचों के मेल से बना है। वह

कितना ही सुन्दर हो, उसका कितना ही ख्याल रखो, पर वह मिट्टी में ही जायगा।

हमारी स्थिति उस कुत्ते के समान है जो साईकिल के आगे दौड़ता है। यदि वह जरा भी ढील करेगा या रुकेगा तो साईकिल के चक्र (पहिया)के नीचे आ जायगा। वैसेही हम भी काल चक्र के आगे दौडते जा रहे हैं। कई जन्मों से दौडते जा रहे हैं। कहीं विश्रांति नहीं। राम थे तब भी हम थे, कृष्ण थे तब भी हम थे, ईसा थे तब भी हम थे, मोहम्मद थे तब भी हम थे। जाने किस भेष (वेश) में थे, पर थे। इन दुनियावी पदार्थों में हमारा जीवन बर्फ के ढेले की माफिक बह रहा है। बर्फ का ढेला बहता जाता है और गलता जाता है। वैसे ही हमारा समय भी, हमारा जीवन भी समाप्त होता जा रहा है। आखिर हम इन क्षणिक हर्ष के पदार्थों से कब तक खेलते रहेंगे ?

धृतराष्ट्र भीष्म पितामह को कहते हैं–"हमें बड़ा दुख हो रहा है। एक एक दिन सौ वर्ष के बराबर बीता है।"

तो भीष्म कहते हैं–"जो हो गया, वह भूल जाओ।" उत्तरायण का यह महोत्सव भी कहता है–जो हुआ है अब तक, वह सब भूल जाओ। जहाँ हो वहां से आगे बढो। दक्षिण से उत्तर की ओर जाना उत्थान है और उत्तर से दक्षिण की ओर जाना पतन है। यह महोत्सव कहता है--उत्तर की ओर जाओ, उत्थान की ओर बढो। योग को अपने जीवन में अपनाओ।

इन दिनों लोग पतंग उड़ाते हैं। पतंग आकाश में उड़ती हुई कहती है-मैं हूँ तो छोटी सी, पर सबके सिर पर नाच रही हूँ। पर किसके सहारे ? उसको डोरी का सहारा है। फिर उसको उडाने वाला भी है। इतना होने पर भी वह उड़ नहीं सकती, यदि प्राण वायु न हो तो। प्राण वायु उसके लिये जरूरी है। ऐसे ही प्राणवायु न हो तो हम भी बेकार हैं। हमारी इन्द्रियों का स्वामी मन है और मन का स्वामी प्राण है। अतः प्राणायाम करो। प्राणायाम करने से मन एकाग्र होता है। मन एकाग्र होता है तो विक्षेप यानि मल, यानि पाप वासनाएं मिटती हैं और धीरे धीरे आनन्द की उपलब्धि होती है ।

यदि भगवान के प्रति भक्ति करो तो, यह भक्तियोग है। यदि ध्यान करो तो यह ध्यानयोग है।

यदि हम इन्द्रियों के कहने में चले, तो भटकते रहेंगे। आँखें हमें अच्छे दृश्य देखने के लिये भटकायगी। कान हमें अच्छा संगीत सुनने के लिये भटकाएँगे। घ्राणेन्द्रिय हमें अच्छी सुगंध के लिये भटकायगी। जिह्वा हमें हलवाई की दुकान पर ले जायगी। यह तो कैद हो गई हमारी ! हम स्वतंत्र नहीं रहे। जीभ और आँखों के द्वारा हमने मजा लिया, ऐसा है क्या ? नहीं, मजे ने हमें ले लिया है। हमारी उम्र बीतती रही। हमारा समय इन मजों के पीछे जाता रहा। हम पूरे होते रहे इन सबके पीछे, पर ये मजे कभी पूरे नहीं हुए। इनका अन्त नहीं आया कभी।

लोग कहते हैं-"महाराज ! हम तो सुखी हैं। हमारे घर है,

बार है, छोकरा छोकरी है, कारखाना है।" महोत्सव कहता है-यह सुख नहीं है। यह उत्थान नहीं है। ये व्यावहारिक अनुकूलताएँ अवश्य हैं, पर प्रतिकूलताओं से घिरी हुई होगी ही। संसार में कोई यदि कहे-मुझे केवल सुख ही मिले, दुख नहीं मिले, तो वह पागल है और यह सुख भी सुख नहीं है, सुख की भ्रांति है। जब वासना कुछ क्षणों में पूरी हो जाती है, तब क्षणिक हर्ष दे जाती है। फिर वापस खडी हो जाती है। यह सुख नहीं है। सुख तो उसको कहते हैं कि एक बार यदि आपने तीन मिनट उसका अनुभव किया है, तो कभी उसको भूल नहीं सकते। और यह अनुभव योग के द्वारा होता है।

भारत के एक योगी गुरू का शिष्य अमेरिका गया। वहाँ उसने थोड़ा सा योग का प्रचार किया। कुछ समय बाद वहाँ उसको एक संस्था भी स्थापित करदी। कुछ फीस भी रख दी योग सीखने आदि की। अब वह वहाँ पूजा जा रहा है। यद्यपि अपने गुरू के सामने जो भारत में रहते हैं, वह इस योगिक ज्ञान के बारे में प्राथमिक कक्षा का साधक है, पर वहाँ पूजा जा रहा है। और भारत में तो ऐसे कई योगी बैठे हैं। योग की ऐसी महिमा है।

ऐसे ही एक युवा साधु नेपाल की तरफ जा रहा था। एक पहाडी के पास से जब वह गुजर रहा था, तो उसे एक वृद्ध साधु मिले। उनकी उसने बहुत सेवा की। वृद्ध साधु ने प्रसन्न होकर कहा-"सामने वाले बोरों में से दो बोरे उठा ले जाओ उनसे खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ।" उन बोरों में नेपाल के नोटों

के बन्डल भरे पडे थे। युवा साधु ने कहा– संतों से कुछ माँगना नहीं चाहिये। फिर भी संतों की शरण में आने से नश्वर ही मिले, तो शाश्वत कहाँ मिलेगा ? तो उन्होंने कहा–"बेटा ! आजकल सब लोग इस प्रकार के हो मिलते हैं, तो सोचा तुम भी वही चाहते होंगे। अच्छा बोलो, तुमको क्या चाहिये ?" तो वह युवा साधु बोला–"सुना है, जो मर जाता है, वह जीना सीख लेता है। मैं मौत को देखना चाहता हूँ।"

मरो मरो सबको कहे, मरना न जाने कोय।
एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना ना होय॥

उस साधक का कितना साहस है ? जिस मौत से हम सब डरते हैं, भारत का वह साधक उसी मौत को मांग रहा है ! वह चाहता तो सिगरेट, सिनेमा और रेडिओ का शौक कर सकता था। कोट पेन्ट पहनकर घूम सकता था। पर उन सबको ठुकराकर वह मौत मांगता है। कभी कभी हम भी तंग आकर कहते हैं, 'इससे तो मर जाय तो सुखी हो।' पर हम तंग आकर या घबराकर कहते हैं। हिम्मत से नहीं कहते। और हिम्मत के बिना काम नहीं चलता। यह वीरों की भूमि है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य।' यहाँ आश्रम में पिछले ५ दिनों से एक सरदारजी भी साधना कर रहे हैं। उनसे पूछो, गुरु गोविन्दसिंह कहा करते थे 'सवा लाख से एक लडाऊँ तब गुरु गोविन्दसिंह कहलाऊँ।' अतः साहस का अवलम्बन करो।

एक छीपा आया था मेरे पास। कहने लगा–'महाराज ! आप जो बोलते हैं, वही हमारे गुरु बोलते हैं।' अरे गुरु तो सब एक हैं। पंथ में फर्क हो सकता है, पर उनमें नहीं।

संत संत सब एक हैं, अपनी अपनी ठौर।

तो ऐसे ही उन संत से वह युवा साधु कहता है–'महाराज! मुझे ये बोरे नहीं चाहिये। मुझे तो वह दो जिसके बाद किसी वस्तु की आवश्यकता ही न रहे। मुझे तो मौत दे दो।' उन संत ने युवा साधु को थोडा बातों में लगाया। उन्होंने पूछा– 'तुमने घर क्यों छोडा ? भगवान तो सब जगह है। भगवान का ध्यान तो घर बैठे भी हो सकता है।' उसने जवाब दिया–'महाराज ! जो घर नहीं छोड सकते उनके लिए यह ठीक है। पर एकान्त में कुछ समय के लिए तो जाना ही पडता है एक विद्यार्थी की तरह। विद्या अर्जन करनेवाला विद्यार्थी घर से दूर रहकर विद्यार्जन करें तो अधिक एकाग्रता से कर सकता है। उसी प्रकार मेरा घर छोड़ना भी है। पहले ईश्वर प्राप्ति कर लें, फिर भले ही कहीं जाना पडे या न पडे।'

बातों ही बातों में उन संत ने युवा साधु को एक थप्पड मार दी। फोटो लेते समय जैसे तेज प्रकाश की एक चमक बिजली की तरह चमक कर विलीन हो जाती है, वैसे ही उस साधु को महसूस हुआ और वह बेहोश हो गया। उसका स्थूल देह वहीं रहा, पर उसका सूक्ष्म शरीर आकाश और देशदेशान्तर का दर्शन करके आ गया। संत ने उस युवा साधु को प्रातः जगा

दिया। उसे जो अनुभव करना था वह हो गया था। पर यह तब हुआ जब उसने तुच्छ चीजों की ओर ध्यान नहीं दिया। अपने लक्ष्य को नोटों के बोरों पर भी न्योछावर नहीं किया।

उत्तरायण महोत्सव कहता है– तुच्छ चीजें यदि रुकावट डालें तो मत रुकना। आगे ही बढते रहना। चरै वैति चरै वैति। छोटी छोटी बातों से प्रभावित नहीं होना। जो छोटी छोटी बातों से प्रभावित हो जाता है, जो छोटी छोटी बातों में उलझ जाता है, वह महान् तत्त्व को कैसे पहचान सकता है? हमें भगवान ने भारत में जन्म दिया है। हमें भगवान ने बुद्धि दी है। इसका ऐसा उपयोग हम करें जैसा भीष्म पितामह ने किया था, जैसा ध्रुव और प्रह्लाद ने किया था। उन्होंने उस महान तत्त्व को प्राप्त किया था।

यह महोत्सव कहता है कि सूर्य भगवान की तरह आप भी अब अपना रथ (जीवन प्रवाह) उत्तर की तरफ ले जाओ। अब एक ऐसी लक्ष्मण रेखा खींच दो कि इससे नीचे नहीं जायेंगे। रहेंगे व्यावहारिक जगत में, पर लक्ष्य हमारा आध्यात्मिक जगत का रहेगा। व्यवहार से हम प्रभावित नहीं रहेंगे। योग और वेदांत का सहारा लेकर सच्चे सुख की तरफ आगे बढेंगे। हमारे शरीर के अन्दर मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र आदि चक्र होते हैं। ज्यों ज्यों ध्यान करके हम उन्हें विकसित करते हैं त्यों त्यों हम शाश्वत सुख की तरफ आगे बढते हैं। योग कहता है, योग करके इन चक्रों को विकसित करो और आगे बढते जाओ।

महोत्सव कहता है, अपनी जवाबदारियों को भलेही निभाओ-निभाते रहो, पर अपनी दृष्टि वहाँ रहे जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़े। हम ही लौटते हैं–सुख के लिए। पर यदि सच्चा आनन्द मिल जाय तो लौटने की आवश्यकता नहीं। भोगों के लिए नहीं, आनन्द के लिए अपनी हिम्मत को थोडा सहारा दो, हवा दो तो भगवान तो दे ही देगा। भगवान की भक्ति से थोडी डोर लगा दो।

जिसको अपने आत्मदेव का अनुभव हो जाता है, उसका तो यम भी सेवक बन जाता है। उसके कहने के अनुसार चलता है। भगवान कहते हैं–

यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्ध तत्त्वः काम्यते याश्चकामान्
तं तं लोकं जयते ताश्चकामां स्तस्मा दात्मज्ञ
हयर्चेय भूति कामः।

वह आत्मनिष्ठ व्यक्ति जिन जिन लोकों की इच्छा हो उनमें अपने भक्तों एवं संबंधियों को भेज सकता है। जिन वस्तुओं की इच्छा हो प्राप्त कर सकता है। अभी तो हम प्रकृति की कैद में हैं। जरासी गर्मी लगी तो बेचैन हो जाते हैं। जरासी ठंड लगी तो ठिठुर जाते हैं। जरासा ऋतु परिवर्तन हुआ तो बुखार पकड लेता है हमको। पर यदि स्वरूप में स्थिर हो जायें तो भले फांसी लग जाय, कोई परवाह नहीं। मंसूर को फांसी लगी थी, पर उन्हें कोई डर नहीं था। वे अपने आत्म तत्त्व में स्थित थे। हम तो जरा

सी सत्तामिले तो राजा बन कर ऐंठ जाते हैं। जरा सी लक्ष्मी ने सहारा छोडा तो कंगाल बन जाते हैं। पर आत्मनिष्ठ व्यक्ति हर हाल में मस्त रहता है। रास्ते में कई चिडियाएं आती हैं, पर पतंग ऊपर ही उड़ती जाती है। क्योंकि उड़ानेवाला हौशियार होता है। विरोध तो साधक के जीवन में आयंगे ही। जिसके रास्ते में विरोध आते है, समझो वे उसको आगे बढ़ाने के लिए ही आए हैं। महात्मा क्राईष्ट के जीवन में आए थे विरोध, पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया था इसलिये आज वे पूजे जाते हैं।

महोत्सव कहता है—विरोधों की तरफ ध्यान मत दो। लक्ष्य रखो आत्मसाक्षात्कार। अनुकूल परिस्थितियाँ भी आयगी और प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी आयगी। कभी उत्साह आयगा, कभी उत्साहहीनता अपना रंग जमायगी, पर आप उस पर ध्यान मत दो। आपका लक्ष्य तो सत्य है न!

महोत्सवक का आयोजन इसी निमित्त हुआ है कि त्रिविध शक्तियाँ बढ़ें। आज भौतिक साधन बहुत हैं पर, घर घर में अशांति है। आवागमन के लिये रेलगाडियाँ बढ़ी हैं, हवाई जहाज बढे हैं, बातचीत के लिये तार, टेलीफोन और वायरलेस बढ़े हैं, मनोरंजन के लिये रेड़ियो और सिनेमा जैसे साधन बढ़े हैं, पर मनुष्य के मन की अशांति नहीं गई है। वह बढ़ती ही गई है। क्योंकि हम ने योग का सहारा छोड दिया है। पहले हमारे यहाँ लो। दिन में तीन बार संध्या आदि के समय प्राणायाम करते थे जिससे सात्विकता बढ़ती थी। उससे एक दूसरे के प्रति द्वेषभाव कम रहता

था, जिससे झगडे कम होते थे और शान्ति रहती थी। अभी यदि हम तीनबार संध्या नही कर सकते तो दो बार करें। दो बार भी नहीं कर सकते तो एक बार तो करें।

महोत्सव कहता है—अब अपने जीवन में परिवर्तनक लाओ। पहले हम भजन कीर्तन ही करते रहे हैं। केवल ढोल मंजीरे और स्वर ताल कूटने से ही काम नहीं चलेगा। ठीक है थोडा समय उसमें दें, पर वह बाल मन्दिर में पढ़ने जैसा ही है। उससे परिणाम संतोषकारक नहीं आता। पहले हम हमारी पतंग झौपडों की छतों पर ही उड़ाते थे, पर अब उसे बहुत ऊंची अट्टालिकाओं के भी ऊपर उड़ानी है।

मेरे पास पहले एक व्यक्ति आया था। मैंने उससे पूछा—'कैसे आये हो?' उसने कहा—'बस, दर्शन करने आया हूँ।' उसकी पहले एक के बाद एक दो शादियाँ हुई थी, पर दोनों पत्नियाँ स्वर्गस्थ हो चुकी थी। अब वह तीसरी शादी के फिराक में था। लड़की भी देख चुका था। पैसे की कमी थी नहीं घर में। वह स्त्री के बिना रह नहीं सकता था। मैंने उससे सारी बात जान ली। उम्र अधिक और अभी भी वह शादी करना चाहता है! मैंने उससे कहा— 'मैं तुम्हारी शादी करा दूं तो (जीवात्मा और परमात्मा की शादी)? उसकी मेरे ऊपर श्रद्धा बैठ गई। वह मान गया। वह घर गया और पसन्द की गई लड़की को कहा—'तू मेरी पुत्री के बराबर है। ले ये ५००) रु. और अपने घर चली जा।' लोगों से कहा—'अब मेरी शादी तो होगी, पर स्वामीजी के हाथों होगी। अभी भी वे आपके बीच में ही बैठे

हैं। उनकी भूमिका बहुत अच्छी है। वे योग में बहुत बढ़ गए हैं। उनका स्थूल शरीर भूमि पर पडा रहता है और अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा आकाश एवं कई लोकों में घूमकर आ जाते हैं।

पर हमारे भारत का तत्त्व ज्ञान कहता है, इतना ही नहीं, और आगे बढो। आगे कारण शरीर है। उससे भी आगे जो है वही तुम्हारा परम पद है।

स्वामीजी को नजर नदी में दूर से भक्तों की पंक्तियों पर पडती है। अभी भी लोगों का आना जारी है। उनको लक्ष्य कर स्वामीजी पुनः बोलना प्रारम्भ करते हैं–

स्वामीजी–देखो, लोग अभी भी नदी में से आ रहे हैं। पहले नदी में पानी अधिक था। उस समय भी लोग नदी में से आते थे, पर भगवान की दया है कि कोई कभी डूबा नहीं। पिछली-बार एक ने मुझे बताया था कि 'स्वामीजी, हमलोग आ रहे थे पानी में से, तो एक जगह पानी अधिक था। हम घबराए। मन ही मन आपको स्मरण किया तो बडा आश्चर्य देखा। मेरे जैसे लम्बाई और उम्र में बडे लोगों के भी कमर तक पानी था नदी का और बच्चों के भी कमर तक ही था। वही नदी, वही पानी हमलोगों की लम्बाई अलग अलग, पर पानी की सतह सबके कमर तक ही! बड़ा आश्चर्य हुआ। हम सब सही सलामत आश्रम में आए थे।' सब भगवान की माया है। लोग दुःख पड़ता है तो बाह्य साधनों की तरफ देखते हैं। द्रौपदी भी जब तक बाह्य साधनों की तरफ देख रही थी तब तक उसे निराशा ही हाथ लग

रही थी, फिर जब हृदय की गहराई में गई तो भगवान एवं भगवान की शक्तियाँ वहीं तो थीं।

भगवान तो पास ही है। एक ही सत्ता सबमें व्याप रही है। वह त्रिगुणातीत है। ढ़का हुआ है। भगवान को देखना है तो दूरबीन चाहिये। आप कहेंगे–हम दूरबीन ले आते हैं, हमें दिखाओ। यह दूरबीन नहीं। उसके लिये दूसरी विशेष दूरबीन चाहिये। अन्तःकरण की दूरबीन। पहले अन्तःकरण को शुद्ध करें, एकाग्र करें और आत्म विचार करके आत्म ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति करें तो परमात्मा प्रकट हो जायगा। साक्षात्कार हो जायगा। यदि नहीं हो तो वक्ता की जबान काट लो। (विनोद में) मनीबेक गारन्टी (Money back guarantee)। पैसे तो लेते नहीं, इसलिये टाइम बेक गारन्टी।

सब हँसने लगते हैं।

श्री लेखराज भाई बचानी, जो गुजरात के पार्लामेन्ट–सेक्रेटरी हैं, अभी देर से आए हैं और स्वामीजी के आसन के पास ही नीचे बैठ जाते हैं। श्री कृष्णभाई की नजर उन पर पड़ती है। वे उनको आदर सहित ऊपर अन्य अतिथियों के साथ बिठाते हैं।

स्वामीजी–हमारा दैनिक कौटुम्बिक जीवन इतना अशांत क्यों होता जा रहा है? क्योंकि हमारे अन्दर तीन शक्तियों का समन्वय नहीं होता है। भावबल, क्रियाबल और प्राणबल इन तीनों बलों का समन्वय यदि हमारे जीवन में हो जाय तो जीवन चमकता है। यदि भावशक्ति शुद्ध नहीं है तो व्यक्ति

मारना-पीटना, शराब पीना और बुरे काम करके समाज को पतन की तरफ ले जाने वाले काम करता है। यदि पिता की भावना है कि लड़का अच्छा बने, पर प्राणबल कमजोर है लड़के के प्राणबल से, तो लड़का पिता का विरोधी बनकर उनपर हावि हो जायगा। घरों में देरानी जेठानी आदि सबका यही हाल है। भगवान प्राप्ति की बात थोडी देर के लिये यदि हम अलग भी रख दें तो चलेगा, पर जीना तो सीख लें। देरानी का भावबल प्रबल हैं और प्राणबल कमजोर है व जेठानी का प्राणबल प्रबल है और भावबल कमजोर है, तो भी वे दोनों लड़ेगी। यदि आमने सामने नहीं लड़े तो भी आँखों से तो एक दूसरे को नाराजगी के भाव से देखेगी ही। कुछ नहीं तो बर्तन बजाकर या बच्चों को पीटकर अपना गुस्सा प्रकट करेंगी। दोनों बलोंका समन्वय नहीं है अत: लडती हैं। पिता में यदि इन बलों का अभाव हुआ तो वे सब सदस्यों को ठीक ढंग से नहीं चला सकेंगे, अपने से हीन व कमजोर को दबाएंगे और नाम लेंगे अनुशासन का।

अनुशासन में प्यार नहीं, तो जहर बन जाता है। बिना प्यार का शासन झगड़ा, तंग दिली और खिंचाव बन जायगा। प्यार में से शासन निकाला तो मोह बन जायगा। पिता का शासन हो पर प्यार से मिला हुआ हो। इस प्रकार इन तीन बलों का समन्वय नहीं है तो हम कुटुम्ब चलाने में असफल हो जाएंगे। योग की कुछ सामान्य तरकीबों का उपयोग करके हम इन बलों का

अपने में सामंजस्य कर सकते हैं। जो बल कमजोर है उसको प्रबल कर सकते हैं।

कई लोग काकडे (गलेका टांसिल) का आपरेशन कराते हैं। इसकी आवश्यकता हो नहीं है। दांत भींच कर मुँह से श्वास लेवें, फिर मुँह खोल कर जोरसे श्वास धक्के के साथ बाहर फेकें (स्वामीजी स्वयं करके बताते हैं) तीन दिन ऐसा सुबह शाम करें तो आपका दर्द जाता रहेगा। आपरेशन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। आपको नेत्र, कान और मस्तिष्क में थकावट अनुभव होती है तो अर्वाचीन भारत कहेगा-'किसी स्पेशिलिष्ट डाक्टर के पास जाओ' पर प्राचीन भारत का योग कहेगा-जलनेतिकी विद्या (नाक की पानी द्वारा सफाई की एक विशेष प्रकार की विधि) सिखा दो। उसका कोई खर्चा नहीं। १५०० छोटी मोटी बिमारियों का यह एक ही इलाज है। इससे स्मरण शक्ति एवं नेत्रों की ज्योति भी बढ़ती है। मुझे संस्कृत सीखने की इच्छा थी। यह क्रिया मैं पहले करता था। उन दिनों मैंने केवल १० महीने में संस्कृत सीख ली थी।

स्वामी लीलाशाह के सामने एक बार भक्त एक पेटी ले आए स्वामीजी ने पूछा-इसमें क्या है? कौन सा माल है इसमें? खोला तो उसमें से बहुत सारे पुराने चश्मे निकले। स्वामीजी ने पूछा-'ये किसलिए लाए हो?' भक्तों ने कहा-'यह जलनेति का चमत्कार है। उससे इतने लोगों के चश्मे छूट गए हैं। आपने ही तो यह विधि बताई थी।'

अपना घर व मन प्रसन्न हो तो जीने का मजा आता है। हम बाहर से तो एयर कन्डीशन में बैठे हैं, पर भीतर असंतोष की ज्वाला धधक रही है। हृदय में प्यार नहीं, चेहरे पर प्रसन्नता नहीं। बस अनवरत दौड भाग में लगे हैं। १००) रु. वाला २००) रु. के लिये लगा है। २००) रु. वाला १०००) रु. कमाने के लिए लगा है। बड़े बड़े सेठ आकर कहते हैं, मैं बड़ा दुखी हूँ।' यह भी कोई जीवन है?

जीवन में सदैव प्रसन्न रहना चाहिये। एक महापुरूष ने कहा है–'श्रेष्ठ में श्रेष्ठ भक्ति है प्रसन्न रहना।' हर जीव प्रसन्नता के लिये मनोरंजन करता है। मैंने नदी के किनारे देखा–चील व कबूतर भी मनोरंजन करते हैं। मैं जब मणीनगर हाईस्कूल में पढता था तब...स्वामीजी बोलते बोलते रुक जाते हैं। सभी लोग उत्सुक होकर उनकी तरफ देख रहे हैं। स्वामीजी विनोद करने लगे–

स्वामीजी–बता दूँ?

सभी–हाँ जी !

स्वामीजी–नहीं, नहीं–जाने दो।

फिर रुक कर

स्वामीजी–अभी बताऊँ या अगले उत्सव पर?

सब–अभी बता दीजिए।

स्वामीजी–देखो, एक ब्राह्मण का लड़का था। वह अपने ससुराल गया था (पूरी कथा सहज वाणी भाग एक पुस्तक में

पढें, पृष्ठ क्र. १७) पूरा प्रसंग सुन कर लोग हँसते हँसते लोट पोट हो रहे हैं। कुछ हँसी शान्त होने पर–

स्वामीजी–वैसे ही मैं जब मणीनगर हाईस्कूल में पढ़ता था तो मैं सदैव प्रसन्न रहता था। इसलिये अध्यापकों ने मेरा नाम भी बदल कर हँसमुखभाई रख दिया था। जब दूसरे सहपाठी गणित के प्रश्न हल करने में तन्मय रहते थे तब मैं तो पहले ही हल करके बैठ जाता था और दूसरों के कमीज के छोर आपस में बांध देता था। जब वे उठते थे तब एक दूसरे को खींचते थे। फिर खूब हँसी छूटती थी।

यह ब्रह्मविद्या का सत्संग इतना गूढ़ है कि इसको अच्छे-अच्छे विद्वान भी नहीं समझ पाते। इसलिये बीच बीच में ऐसे विनोदी प्रसंग भी सुनाने पड़ते हैं। बात चल रही थी कि घर का वातावरण सुखपूर्ण एवं शांत होना चहिए। सुबह ही सुबह परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे होकर एक कमरे में दीप व धूप करके अपने ईष्टदेव का (जो भी हो) जोर से लम्बा उच्चारण करें तो परिवार का जीवन शांत एवं सुखद बनेगा।

कल से यहाँ भी ध्यानशिविर ३ दिन का प्रारम्भ हो जाएगा। भिन्न भिन्न स्थानों से आए हुए सभी साधकों को नदी में ले जाकर ध्यान की विधि सिखाकर ध्यान कराया जाएगा। कल सुबह ४ बजे ही बिगुल बज जायगा। सब जल्दी उठेंगे। कुछ दिन पूर्व गाँधीनगर से कुछ लोग आये थे। उन्होंने देखा कि स्वामीजी शहर से दूर इधर जंगल में रहते हैं तो बोले-'स्वामीजी!

यहाँ आपको कुछ असुविधा नहीं होती ?' मैंने उनको बाहर से मेरे ध्यान करने की गुफा भी बताई और कहा-'योग की कई क्रियाएं इस गुफा में मैं कर सकता हूँ। योग की कुछ ऐसी भी क्रियाएं होती हैं जिनको करने से भले आप शहर के मध्य या जंगल में भरी गर्मी में बैठे हो, पर ऐसा अनुभव होगा कि आप हिमालय की कंदराओं में बैठे हैं। वैसे ही आप यदि दांतों को किटकिटाने वाली ठंड में बैठे हैं, पर आपके शरीर से पसीना छूटेगा। इस प्रकार की कुछ क्रियाएं भी नदी में सिखाएंगे। (मूंछों पर हाथ रखते हुए) रखो सब मूंछों पर हाथ और बोलो जोर से-'जीवन को बदलेंगे।'

मूंछों पर हाथ रखते हुए एक साथ हजारों की संख्या में बैठे लोगों का सामूहिक स्वर गूंज उठता है-

'जीवन को बदलेंगे।'

मंच पर बैठे मिनिस्टर लोग भी मूंछों पर हाथ रखते हैं। सारे वातावरण में हँसी ही हँसी गूँज रही है। मिनिस्टर लोगों में से किसी एक ने धीरे से कहा-'स्वामीजी ! हम लोगों ने तो मूंछों पर हाथ रख दिये, पर बहनें क्या करें ?'

फिर हँसी गूँजती है।

स्वामीजी—राजा जनक की सभा में एक बार गार्गी आई। वह दिगम्बर अवस्था में थी, इसलिये सभी सभासदों ने मुंह फिरा लिया। गार्गी बडे साहस के स्वर में बोली-"आप लोगों ने मुझे देखकर मुंह क्यों फिरा लिया ?" सभासदों ने कहा-"तुम ऐसी अबला इस अवस्था में आई हो।" वह बोली-"अबला तो

तुम हो जो अपना रक्षक बाहर ढूंढ रहे हो। मैं तो सबला हूँ, अपना रक्षक आप हूँ।"

स्वामीजी महिलाओं की तरफ देखकर गले से हुंकार भरे शब्द निकालकर कहते हैं—

रखो आप सब भी मूंछों पर हाथ ! ....रखो !

सभी महिलाएं मूछों पर हाथ रखती हैं। वातावरण में जोर की हँसी गूँज जाती है, जो काफी देर तक चलती रहती है।

लेखक सोच रहा है-संतों की लीला कौन समझ सकता है ? पहले शूरमा लोग युद्ध के समय मूंछों पर हाथ रखते थे। अब स्वामीजी ने श्रोताओं के हाथ मूंछों पर रखवाए थे, पर अभी अभी तो महिलाओं के हाथ भी मूंछों पर रखवा लिये हैं। यह कैसा विनोद है ? नहीं, यह विनोद नहीं है। विनोद की आड़ में वेदान्त का उद्घोष है। वेदान्त साहस देता है, कायरता नहीं। उसी वेद वाक्य को इस विनोद-विनोद में स्वामीजी ने व्यवहार का रूप दिला दिया है।

सारे वातावरण में हँसी के साथ एक अद्भुत साहस का सञ्चार हो गया है।

स्वामीजी-हमारे प्राचीन भारत की विदुषि नारी मदालसा अपने बच्चे को दूध पिलाते समय कहती है-'मेरा बेटा अब दूसरे की कोख में नहीं जायगा। विवाह के समय से मैंने यह तय किया हुआ है कि जिसको मैं जन्म दूं, उसे फिर दूसरा जन्म नहीं लेना पडे। बेटा, दूध ४ घंटे में बिगड़ जाता है, क्योंकि वह

प्रकृति के अन्तर्गत है। अतः तू उस परम तत्व को जान ले जो शाश्वत है, आज बड़ा दुर्भाग्य है कि जिस भारत में दूध के साथ ब्रह्मविद्या का पाठ माँ कराती थी, उसी भारत में आज ५०-५० वर्ष के बूढे भी संत के होते हुए भी लाभ नहीं उठा पाते।

आप कहेंगे-हम तो गृहस्थी हैं। मैं कहता हूँ-योग की जरुरत जितनी संन्यासी को है उतनी ही गृहस्थी को भी है। राजा जनक गृहस्थी थे। मदालसा व गार्गी गृहस्थी थी। अपने जीवन को ऋषि जीवन बनाओ। योग के बल से जनक की जिन्दगी बदल गई, दशरथ की जिन्दगी बदल गई, चुडाला और शिखरध्वज की जिन्दगी बदल गई, तो हमारी क्यों नहीं बदल सकती? हम अभी थोड़े भूले हुए हैं। हमें हमारी भूल निकालनी होगी। धन्य है उस वैदिक धर्म को, कि वह कोई जाति का धर्म नहीं है, जिसके कारण भारत जगत का गुरु रहा है, है और आगे भी रहेगा। पर हमें उठना होगा। आत्म-साक्षात्कार के लिये हमारा जीवन हमें मिला है। उसके लिये ऐसे उत्सवों की रचना महापुरुष करते हैं।

आप सबको मैं अपनी दृष्टि से देखता हूँ। आपके हृदय में विराजमान् परमात्मा है, आपको प्रणाम करता हूँ। आपका ही किया सब है। महापुरुषों का जो प्रसाद मुझे मिला है, वह मैंने अभी आपको दिया है।

स्वामीजी का वचनामृत प्रवाह रुक गया है। अब श्रीकृष्ण भाई के आग्रह से विधायक श्री मोतीभाई बोलने के लिये खड़े होते हैं।

श्री मोतीभाई चौधरी-पूज्य स्वामीजी, साधक भाइयों एवं माताओ। जब से बोरतवाड़ा में एक बार स्वामीजी के दर्शन किये थे, तब से पुनः उनके दर्शन की बड़ी इच्छा थी। बीच में वह इच्छा दब गई थी, पर सौभाग्य से आज पूरी हो गई है। हमलोग सच्ची दिशा में चलें, इसलिये ऐसे महापुरुष संत आते हैं। अपना देश भौतिकता में डूब रहा है, फिर भी भगवान की कृपा है कि ऐसे संतों का सहारा मिलता रहता है। ईश्वर सर्वत्र है, पर उससे तार हम जोड़ नहीं पाते। तार जोड़ने का काम सद्गुरु करवाते हैं, इसीलिये कहा है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाय?
बलिहारी गुरु आपकी जो गोविन्द दियो बताय।

हमारे सद्भाग्य से गोविन्द को बताने वाले हर युग में कायम मिलते रहते हैं। इसीलिये अपना देश अनेक संकटों में भी जीवन्त रहा है। ईश्वर से तार जुड़वाने वाले ऐसे महापुरुष प्रायः नदियों के किनारे मिलते हैं। दधीचि जैसे महर्षि भी इसी नदी के किनारे रहे थे। आज पूज्य स्वामीजी के दर्शन भी हमें साबरमती नदी के किनारे आश्रम में हमारे सद्भाग्य से प्राप्त हुए हैं। इस अवसर पर आपकी कृपा एवं आशीर्वाद लेकर अपने पुरुषार्थ के साथ मिला दें और आगे बढ़कर अपने जीवन को उन्नत बनाने का दृढ़ संकल्प करें। अपने अधिकार से बाहर की बात करना योग्य नहीं है। मैं केवल इतना ही कहूँगा कि अपने

जोवन रूपी रथ की दिशा सदैव उत्तर की ओर यानि उत्थान की ओर ही रखने का हम सतत ध्यान रखें ।

श्री मोतीभाई बैठ जाते हैं । अब श्री हरिसिंह चावड़ा कृष्णभाई का इशारा पाकर बोलने खड़े होते हैं—

श्रीहरिसिंह भाई चावड़ा—परमपूज्य स्वामीजी, साधक भाइयो एवं माताओ ! असह्य गर्मी में रास्ते चलते यदि कहीं छायादार वृक्ष मिल जाय तो मन को कैसी राहत मिलती है ! वही स्थिति आज मेरी है । हमारे जैसे संसार के लोगों को ऐसा छायादार वृक्ष मिलता रहे तो कितना अच्छा हो ? आज हम सबको साबरमती नदी के किनारे ऐसे ही छायादार वृक्ष के नीचे गृहस्थी के झंझटों से दूर चैन की सांस लेने का सौभाग्य मिला है । आज मनको पूज्य स्वामीजी का सत्संग सुनकर खूब आनन्द हुआ है, पर हमलोगों की यही कमजोरी है कि हमको मशानिया वैराग्य होता है और घर जाकर सब भूल जाते हैं। हमारी स्थिति फिर पहले वाली हो जाती है । उस कमजोरी से हमको बचना चाहिए ।

यहाँ आश्रम का वातावरण कितना पवित्र एवं शांत है ! सामान्य से सामान्य तम्बाकू का व्यसन नहीं करते ऐसे लोग यहाँ आते हैं, ऐसा चमत्कार देखने को मुझे यहाँ मिला है । फिर यदि ऐसी पावन जगह पर हम अधिक समय रहें तो संसार के दुःख रूपी थपेड़ों से बच सकते हैं ।

मैं कोई यहाँ बोलने के लिये नहीं आया हूँ । मैं तो आप जैसे एक साधक की तरह आया हूँ । मुझे तो बार–बार स्वामीजी

को ही सुनने की इच्छा रहती है पर समाज को भी व्यापक पैमाने पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन–प्रवाह सुनने को मिलता रहे ऐसी भगवान से प्रार्थना करता हूँ ।

इतना कहकर श्री हरिसिंह भाई बैठ जाते हैं । गुजरात के पार्लमेंट–सेक्रेटरी श्री लेखराजभाई बच्चानी खड़े होकर बोलना प्रारंभ करते हैं ।

श्री लेखराज भाई बच्चानी :–

संत शिरोमणि परम पूज्य स्वामीजी महाराज, कृष्णभाई, अन्य साधक भाइयो एवं माताओ । आज का दिन बड़ा परिवर्तन कारी है । सूर्य मण्डल एवं ग्रहण आदि के हिसाब से देखें तो उत्तरायण का यह दिन, यदि हम मंथर गति से चलते हों तो गति बढ़ाने की ओर संकेत करने वाला है । मैं गांधीनगर जाते समय कई बार मोटेरा का यह आश्रम वाला बोर्ड देखता था और सोचता था कि वहाँ मुझे जाना है । हर बार कोई न कोई कार्य बीच में होने से इधर नहीं आ पाता था । यह भूल मेरे से हर बार होती थी । सोचता था कि यह भूल मेरी कब सुधरेगी। आज भी मुझे पालनपुर काम था, पर उत्तरायण का यहाँ महोत्सव ! मुझे लगा कि आज पूज्य श्री के चरणों मे जाकर पुरानी चली आने वाली भूल का अन्त करने का अच्छा मौका है, इसको हाथ से नहीं जाने देना चाहिये ! देर से ही सही, पर आज मैंने उस भूल का अन्त कर दिया है और स्वामी जी के श्री चरणों में आशीश लेने उपस्थित हो गया हूँ ।

वैसे मन से मैं स्वामी जी का शिष्य पहले सेही हूँ, पर आज उस वृत्ति का व्यवहार रूप में प्रत्यक्ष पालन कर पाया हूँ। यहाँ तो सभी वर्गों के लोग आनन्द ले रहे हैं। पूज्य स्वामीजी अपना समस्त समय, शक्ति एवं जीवन देकर अपने समाज को धर्म के रास्ते पर आगे बढ़ा रहे हैं। मैं अधिक क्या कहूँ, हिन्दू ही क्या मुसलमान को भी–यहाँ तक कि समस्त दुनियाँ को, ऐसा कहे तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी; आज का दिन आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

श्री बच्चानी भी बोलकर बैठ जाते हैं। श्री कृष्ण भाई अब कुछ सूचनाएं देने के लिये खड़े हो जाते हैं।

श्री कृष्ण भाई :—

पूज्य स्वामीजी ने धारा–प्रवाह जो अपने अमृत वचनों का पान कराया है वह तो ऐसा है कि हम सुनते ही रहें तो भी संतोष नही होगा। अब भण्डारे का कार्यक्रम है। सभी लोग व्यवस्था के अनुसार भोजन के लिये बैठेंगे और शांतिपूर्वक जो स्वामीजी का प्रसाद मिलता है वह लेकर जाएंगे। सेवाधारी प्रसाद वितरण के लिये निश्चित स्थानों पर चले जावें।

अब कुछ समय प्रसाद वितरण का कार्यक्रम चलता है। उसके बाद सभी लोग हर्षित होकर चेटी चन्ड के दिन पुनः यहाँ आश्रम में उत्सव के निमित्त आने का संकल्प करके अपने अपने स्थानों को विदा होते हैं।

१५-१-७६

गुरुवार।

सुबह के आठ बजे हैं। आश्रम से स्वामीजी के पीछे–पीछे १५०–२०० के लगभग साधक चल रहे हैं। ये सभी साधक ध्यान शिविर में तीन दिन के लिये आए हुए हैं। आज सुबह स्वामीजी सबको साबरमती नदी में जिसमें आधो नदी में पानी बह रहा है, उसके परली तरफ ध्यान के लिये ले जा रहे हैं। सब मौन होकर चल रहे हैं। बीच में जल की धारा आ गई है। सब स्वामीजी के पीछे पीछे उस धारा को पार करके आगे बढ़ रहे हैं। एक स्वच्छ स्थान देखकर रेत में स्वामीजी विराजमान हो जाते हैं। उनके सामने सभी साधक अर्ध मण्डल बना कर तीन पंक्तियों में बैठ जाते हैं।

स्वामीजी का संकेत पाकर शंकरभाई एक पुस्तक का सुबोध वाक्य पढ़ते हैं :–

"यदि तुमने अपने शरीर के लिये चैन और आराम चाहा, यदि विलासिता और इन्द्रियों के सुखों में तुमने अपना समय नष्ट किया, तो तुम्हारी खैर नहीं है।

स्वामीजी—देखो, कितना स्पष्ट कहा है ? यदि हमने सांसारिक सुख चाहे तो हमारी खैर नहीं है। सांसारिक सुखों की ऐसी प्रकृति है। यदि तुम किसी का अमंगल चाहते हो तो अपने खर्चे से उसको स्वादिष्ट पदार्थों का भोग करना सिखा दो। यानि सांसारिक विषयों में उसकी सुखबुद्धि हो जाय। बस,

उसका अपने आप विनाश हो जायगा । यदि मंगल चाहते हो तो ज्ञान की बातें करके किसी भी प्रकार उसको संतों की शरण में भेज दो । संतों में आगे भी यदि अंत तक उसकी श्रद्धा बनी रहो तो वह उस पद में पहुँच जायगा जहाँ ब्रह्माजी स्थित हैं । पर यदि तुमने अपने भोग रूपी एन्जिन को हरी झंड़ो दिखादी, उसको आने दिया तो फिर वह एक ही एन्जिन दुःख के डिब्बे के डिब्बे अपने आप आपके पास लाकर खाली कर देगा !

इसलिए अल्प से अल्प में काम चलाने का प्रयास करें । धन कमाने में कई पाप करने पड़ते हैं । यदि अधिक आवश्यकताएं बढ़ाई तो उनकी पूर्ति के लिए अधिक धन कमाना पड़ेगा और उसके लिए अधिक पाप करने पड़ेगें । इसीलिए अपने देश में संतों ने ऐसा ही विचार–दर्शन रखकर अपना जीवन बनाया था । यदि हाथ में ही लेकर खाने का काम चल जाय तो बर्तन रखने की मगजमारी क्यों की जाय ? यदि कोपीन से ही काम चल जाय तो अधिक कपड़े रखने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा बन कर व्यवहार करते थे, इसलिये उनको परमहंस कहते थे । पर अब तो कई ऐसा वेशमात्र हो बनाकर अपने में यह दृढ़ भाव रखता है कि मैं परमहंस हूँ ।

भोगों में स्त्री का सुख मूढ लोग सबसे अधिक मानते हैं । यदि इस काम भोग को आप नहीं चाहें, स्त्री की इच्छा नहीं करें, तो आप स्त्री के स्वामी रहेंगे । उसको आपके कहने में झखमार कर चलना पड़ेगा । पर यदि आपने काम सुख की इच्छा की, तो आप स्त्री के गुलाम बन जाएंगे ।

रूखी भली सुखी भलो, सारी से संताप ।
जो चाहेगा चोपडी तो बहुत करेगा पाप ॥

हम तन्दुरस्त रह पाय, बस इतना ही जुटाना चाहिये । और तन्दुरस्त बहुत कम साधनों से, कुशलता रखने से रहा जा सकता है । उसके लिये अधिक साधन जुटाने की, अधिक कमाने की आवश्यकता नहीं है । केवल कुछ नियम पालन करने पड़ते हैं ।

प्रातः आप घूमने जावें । प्रातः की शुद्ध वायु और बाल रवि की धूप स्वास्थ्य के लिये बड़ी लाभप्रद है । शुद्ध वायु आपके शरीर के रोम रोम के विकारों को दूर भगा देगी । सूर्य की ताजगी देने वाली धूप विटामिन 'ड़ी' आदि तत्व आपके शरीर को देकर आपको पुष्ट बनाएगी । यदि आप प्रातःकाल दौड़ लगाएं तो और भी उत्तम है । प्रातः की दौड़ शरीर में नव-स्फूर्ति का सञ्चार कर देती है :–

प्रातः समय के वायु को, सेवन करत सुजान ।
तांते मुख छवि बढ़त है, बुद्धि होत बलवान ॥

भोजन करते समय भी ध्यान रखें । भोजन में स्वाद की अपेक्षा नहीं करें । पौष्टिक एवं सहज सुलभ भोजन जीभ के स्वाद के लिये नहीं, बल्कि स्वास्थ्य का ख्याल रखते हुए करें । जैसे गाजर में बड़ी शक्ति होती है । उसे भोजन में स्थान दे सकते हैं। रात को गेहूँ, मूंगफली व चने पानी में भीगने को रख देवें । प्रातः उनको खूब चबा–चबा कर खावें । जीभ के स्वाद के लिये जो किसी की चापलूसी करते हैं, वे अपना आत्मघात करते हैं । उनसे अभागा और कौन होगा ?

एक को बहुत चाय पीने का व्यसन था। उसको मैंने पूछा-'अब आप कितनी चाय पीते हैं? उन्होंने कहा-'अब तो बहुत कम कर दी है। दिन भर में केवल दस हो जाती हैं।' कैसे दुर्व्यसनों के गुलाम बन जाते हैं लोग! यह पदार्थों को, आदतों की गुलामी है। ईश्वर ने बुद्धि दी है, उसका उपयोग करके बन्धनों को बढ़ाओ मत, काटो। ईश्वर ने समझ दी है, उससे अज्ञान बढ़ाओ मत, काटो। ईश्वर ने शक्ति दी है, उससे सुकर्म करो, दुष्कर्म नहीं।

भ्रांति यह है कि मूढ समझते हैं, ये सुख के साधन हैं। सुख के नहीं, गुलामी के साधन हैं-बंधन के साधन हैं। तम्बाकू, चाय, मदिरा पीना, रोज दाढ़ी बनाना, रोज ड्राइक्लिनिंग किये बिना कपड़े नहीं पहनना, बालों को भाँति-भाँति से सजाना, चमकीले भड़कीले कपडे पहनना, उनमें आनन्द ढूंढने का प्रयास मृगतृष्णा है। आनन्द कहीं ढूंढने नहीं जाना पड़ता है। वह तो तुम्हारा आत्म स्वरूप है।

हम अपने इसी आत्मस्वरूप को पहचानने के लिए संतों की शरण में जाते हैं, पर संतों की सेवा में हमें व्यवहार शुद्धि का बहुत ख्याल रखना चाहिये। हर पल हमें यह ध्यान रहना चाहिये कि हमसे कोई भी कदम ऐसा न उठे, कोई भी कार्य, कोई भी चेष्टा ऐसी न हो कि सन्तों की सद्कृपा जो हम पर हो रही है उसमें विघ्न पड़ जाय। उस की धारा का वेग सदैव बढ़ते रहना चाहिये, न कि अवरुद्ध हो जाय।

पर कई बार हम लोग संतों के वचन की अवहेलना कर जाते हैं और सांसारिक व्यवहार को ठीक करने जाते हैं। दलील यह देते हैं कि हमारी तो इच्छा नहीं है, पर मित्रों का मन रखने के लिए सिनेमा देख लेता हूँ। उनका मन रखने के लिये चाय पी लेता हूँ। उनका मन रखने के लिये होटल में खा लेता हूँ। ऐसा इसलिये वह करता है कि मित्र के मन को दुःख न हो। अरे, दुख किसको होता है? दुःख तो मित्र के मन में होता है। मित्र तो उसके मन का गुलाम है, पर तुम उसके (मन के) भी मन के गुलाम हो रहे हो और जान बूझकर अपने आत्मोन्नति के मार्ग को अवरुद्ध कर रहे हो।

जो इस भवसागर को तरने का प्रयास नहीं करता वह आत्म हत्यारा है। स्वयं को आत्मोन्नति का ख्याल न करके दूसरों को दुःख न हो इस बात की दलील देने वालों के लिये स्वामी रामतीर्थ कहते हैं-'पामर मनुष्य को कीड़ी मारने में दुःख होता है, पर स्वयं का आत्मघात वह कर रहा है, इस बात का ध्यान नहीं है उसको।' हम व्यवहार को ठीक करने जाय, पर अपना आत्मोत्थान नहीं भूले। नहीं तो वही हो जायगा कि लेने गई थी पूत और खो आई खसम।

संसार के विषय वैसे ही होते हैं जैसे किसी को खुजली हो जाय। खुजली करते समय ठीक लगता है। लगता है कि अब ठीक हो जाएगी, थोड़ी सी और खुजली कर लूँ, पर वह बढ़ती ही जाती है हनुमानजी की पूंछ की तरह जिसने सोने की लंका

को भस्म कर दिया था। वैसे ही संसार के विषय भी बढ़ते ही जाएंगे। उनकी पूर्ति करने आप जाएंगे तो वे तो पूरे होंगे नहीं आप ही पूरे जाएंगे। मर्ज बढ़ता ही जायगा ज्यों ज्यों आप दवा करेंगे। फिर आप को अधिक कमाना पड़ेगा और कमाने में अधिक पाप करना पड़ेगा।

इसलिए विषयों को भोगने को तरफ नहीं, उनको कम करने की तरफ ध्यान देवें। राजा परीक्षित को शीघ्र मोक्ष चाहिये था। वह प्रतीक्षा में बैठा था कि कोई ऐसा साधु मिले जो उसको शीघ्र मोक्ष दिला सके। मुनि शुकदेवजी उसको मिलते हैं और कहते हैं–हे परीक्षित ! जिसको जल्दी मुक्ति चाहिये उसको ऐसा भोजन करना चाहिये जिसमें कमाने की आवश्यकता ही न रहे। हाथ से चल जाय तो बर्तन नहीं लावें।

और आजकल तो कांसा पीतल के ही नहीं, स्टील के बर्तन चाहिये क्योंकि वे चमकते हैं। कोई कोई तो चांदी के बर्तन रखते हैं। मुझे भी एक बहुत श्रद्धालु भक्त चांदी का गिलास दे गया है, वह पड़ा है। उसका उपयोग करूँ तो मुझे कोई सुख नहीं होता और नहीं करूँ तो कोई दुःख नहीं होता। आप में से किसी को उसमें सुख दिखता हो तो ले सकते हैं।

आपमें से कोई कहेंगे—तो क्या स्वामीजी ! ये सब बहुमुल्य बर्तन आदि फेंक देवें ? नहीं, मतलब केवल इतना है कि उनके पीछे हमारा आध्यात्मिक विकास नहीं रुकना चाहिये। आध्यात्मिक उत्थान में हम आगे बढे तो ये सुख की सामग्रियाँ तो

हमारे इर्द–गिर्द घूमेंगी। देवता लोग उन चीजों को लेकर हाथ जोड़कर हमारी हाजरी में खड़े होंगे।

इसलिए भोगों को इच्छा मत करो। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं –

सूखे टुकड़े चबाएंगे, आनन्द की झलक जगाएंगे।
सूली पर चढ़ जाएंगे सोऽहं सोऽहं गाएंगे।
भारत पे वारि जाएंगे एको ब्रह्म लखाएंगे।

जो वैषयिक सुखों की इच्छा नहीं करते, उनको ठुकराते हैं, उनके सामने पहले पदार्थ आते हैं, फिर उनको जँच जाय तो उपयोग कर ले अन्यथा नहीं करे। पर मूढ़ को तो पहले से–महीनों से पदार्थ की वासना लगी रहती है, पर मिलता बाद में है। मूढ उसको कहते हैं जो इन्द्रियों के सुख में लगा है। मूढ का मतलब बिना पढ़ा लिखा नहीं है।

वासनाएं ही जीव को जन्म जन्मांतर में भटकाती रहती है। इसी वासना के कारण जीव को कई बार कुदरत दूसरा शरीर भी जल्दी नहीं देती। वह भूत–प्रेत योनि में भटकता रहता है। फिर वह स्वयं तो दुःखी होता ही है दूसरे के शरीर पर अधिकार करके उसको भी दुःखी करता है।

कहा है— अग्नि जलाए एक को, जहर पीये वो जाय।
दारु पीये एक और दस का विनाश हो जाय।

कुछ तो मद्यपान जैसे दुर्व्यसनों में फंस जाते हैं। 'दारु पीये दस नुं जाय (गुजराती)' पीता वह है पर उसके पीछे दस लोगों का

खाना हराम हो जाता है ।

दारु तो क्या एक छोटी सी इच्छा पूर्ति भी कितनी मइंगी पड़ जाती है, वह देखो-

गुरु नानक के दो शिष्य बाला और मर्दाना एक बार उनके साथ कहीं जङ्गल में से गुजर रहे थे । वहाँ बड़े जोरों की उनको भूख लगी । गुरुजी ने दूर इशारा करके कहा--'वो उस खेत में तरबूज होंगे ।' वे दोनों उस खेत के पास पहुँच गए । पर वहाँ पहुँचने पर विचार करने लगे कि यहाँ इस खेत का मालिक तो है नहीं। यदि अपने आप तरबूज लेकर खाएं तो चोरी मानी जायगी। अब क्या करें ? भूख भी जोरों की लगी हुई है । इतने में उनकी नजर तरबूज के छिलकों पर पड़ी । कोई तरबूज खाकर छिलके छोड़ गया लगता है । उन्होंने विचार किया कि इनको खा लेवें तो चोरी का जुर्म नहीं माना जायगा । उन्होंने उनको पानी से धोकर वहीं खाना शुरु कर दिया ।

थोडी ही देर में खेत का मालिक वहाँ आ पहुँचा । उसने देखा कि रोज कोई तरबूज खाकर यहाँ छिलके छोड जाता हैं । हो न हो चोर ये ही हैं । देखो, आज तरबूज के छिलके भी खाएं जा रहे हैं । आज इनको रंगे हाथों पकड़ा है । अब इनको ऐसा सबक सिखाएं कि आयन्दा इधर आना ही ये भूल जाय । उसने लट्ठ लेकर पीछे से आकर दो चार उनकी पीठ पर जमा दीं । दोनों शिष्य मार खाकर भागे और सीधे गुरुदेव के चरणों में जा पहुँचे । गुरुदेव ने पूछा-'कहो, कुछ खाया कि नहीं !'

उन्होंने सारी बात कह सुनाई और बोले—

खलड़ खाये जो मार पयी, तो गिर खादे क्या होई ?

हमने तो केवल छिलके ही खाने शुरु किये थे, उससे भी इतनी मार खानी पड़ी तो जो गिर खाकर गये थे उनका न जाने क्या होगा ?

गुरुजी ने कहा- तुम भगवान के रास्ते चलते हो और गुरु के शिष्य हो । उनकी कृपा है जो यह कर्म का प्रतिकार है वह तुरन्त अभी का अभी मिल गया । परमात्मा अपने प्यारों के प्रति ऐसा दयालु होता है । अन्यथा इस कर्म का फल पता नहीं कब चक्रवर्ती ब्याज के साथ मिलता । (दयाल भाई की तरफ देखकर) यह दयाल है । पूछो इससे, यह कैसे कैसे कष्टों में पड़ा । इस पर केस चला । सजा भी हुई पर यह सन्त की शरण में आ गया । उनसे प्रेरणा पाकर यह भगवान के रास्ते चल पड़ा, तो आज इसको कितनी शांति हैं ?

स्वामीजी (दयाल से) क्यों दयाल ! कैसा ....? मैं ठीक कहता हूँ न ?

दयाल- (हाथ जोड़कर) जी स्वामीजी । अब तो दिन में एक बार आश्रम में आए बिना चैन ही नहीं पड़ता । दुकान की भी चिंता नहीं होती कि पीछे क्या होता होगा ।

स्वामीजी- यह दारु, मांस, गुण्डागर्दी सब व्यसन रखता था । एक बार पकड़ा भी गया । फिर यहाँ पहली पहली बार आश्रम में आया तो जरा प्रेम से इसको सम्हाला । इसने दारु

मांस भी छोड दिया। पर एक बार इससे रहा नहीं गया और थोडासा दोस्तों के आग्रह से महफिल में पी ही लिया। वह हजम नहीं हुआ और इसको उल्टियों पर उल्टियाँ होने लगी। यह घबरा गया! फिर एक बार दोस्त पीने को शराब की बोतल देकर गया पर जब पीने लगा तो इसके सामने स्वामीजी ही दिखने लगे। (हँसते हुए) क्यों दयाल....?

सब दयाल की तरफ देखने लगे।

दयाल-- जी स्वामीजी। मैंने पीने की बहुत चेष्टा की पर एकाएक सीने पर भार आ गया, जैसे कोई मेरे सीने पर चढ़ बैठा हो और मेरा गला दबा रहा हो। रात को २ -- २॥ बजे मैंने अपने आपको खूब धिक्कारा और मनोमन स्वामीजी से माफियाँ मांगी कि अब ऐसी गलती कभी नहीं करूँगा।

स्वामीजी–ऐसे ही जो गलत रास्ते को त्याग कर भगवान का रास्ता अपनाना चाहते हैं, उनके लिये संत दुआ कर देते हैं और वो प्रकृति के कोप से बच जाते हैं। इसलिये जाने अनजाने हम किसी संत के पास चले गए, तो समझो वह दिन हमारा बड़ा सौभाग्यशाली दिन है। जब संत के पास पहुँच ही गए तो उनके कहे अनुसार श्रद्धा रखकर चलते रहो। भावी सफलता के लिये जल्द बाजी व अधीरता मत दिखाओ। संतोष रखो, हो जायगा आपका काम। उसी से हित होता है।

(नाथा भाई से)

स्वामीजी–तुम भी तो चुने गए हो न इलेक्शन में? अभी क्या हो?

नाथाभाई भूतपूर्व विधायक (M.L.A. पाटण क्षेत्र के) हैं वे पुनः चुनाव में खडे हुए थे, पर पराजित हो गए हैं। इस बार ध्यान–शिविर में बड़े उत्साह से आए हैं।

नाथाभाई– नहीं, अब तो कुछ नहीं हूँ।

स्वामीजी– ....बस। जो कुछ नहीं है (ब्रह्म से तात्पर्य) उसे ही प्राप्त करने के लिये, वही बनने के लिये सब कुछ करना पड़ता है। पर यदि वह 'कुछ नहीं' बन जाय तो सब कुछ मिल जाता है।

जो होता है हमारे हित के लिये ही होता है। भोगों के न मिलने का अर्थ, सत्ता के न मिलने का अथ यह नहीं है कि हमारा भाग्य अच्छा नहीं है। वह तो भगवान की कृपा है हम पर। भगवान चाहते हैं कि हम अन्य की तरह भोगों में लिप्त न होकर भगवद्प्राप्ति में मन लग वें।

भगवान के रास्ते चलने वाले साधक के लिये तो इस प्रकार के अभाव वरदान ही सिद्ध होते हैं। उसके रास्ते में सम्पदा विपदा का काम करती है। अतः जिसको इस साधना मार्ग में आगे बढ़ना है, वह कम से कम में अपना काम चलाने का प्रयास करे और सांसारिक सुखों की इच्छा नहीं करें क्यों कि उनकी प्रकृति दुःखपूर्ण है।

: हरि ॐ :

१६-१-७६

शुक्रवार, रात्रि.

रात्रि के साढे आठ बजे हैं। सत्संग भवन में स्वामीजी का आसन रिक्त है। ता: १४,१५ व१६ तीन दिन का ध्यान-योग शिविर आश्रम में आयोजित है। आज शिविर का तीसरा दिन है। स्वामीजी अभी देर से पधारेंगे, ऐसी सूचना होने से सभी शिविर में भाग लेने वाले भक्तों ने निश्चय किया कि इस बीच कुछ साधक अपने अनुभव बतावें ताकि नवीन आये साधकों को भी लाभ होवें।

श्री कृष्णभाई इस सत्संग सभा के संचालक बन गए हैं। उनका इशारा पाकर एक भक्त जो अहमदाबाद के अच्छे व्यापारी हैं अपना अनुभव सुनाने खड़े होते हैं। इनमें वे सब बुराईयाँ पहले थी जो किसी बुरे से बुरे व्यक्ति में हो सकती है। मांस-मदिरा-जुआ सब में ये पारंगत बन चुके थे। पर अपने सद् भाग्य से एक बार, ये आश्रम में पहुँच जाते हैं। जब स्वामीजी की नजर इन पर पड़ती है, तो इनको लगता है कि उनकी दृष्टि जैसे इनके गहरे अन्तराल तक पहुँच गई है और इनके पिछले सब कर्मों का एक्सरे की तरह अन्वेषण कर रही है। आश्रम से लौटने के बाद भी वे स्वामीजी का दर्शन विस्मरण नहीं कर पाते। रात्रि को पूर्व आदत के अनुसार ये जब मदिरा पीकर सोये तो वे कहते हैं-

"मैं जब सोया तो वे ही दोनों बड़ी बड़ी प्रखर आँखे मुझे घूर रही थी। जैसे वे कह रही थी-तुमने जो नहीं खाना चाहिये वह खाया है। तुमने जो नहीं पीना चाहिये वह पीया है। तुमने जो नहीं करना चाहिये वही करते आ रहे हो। आखिर तुम ये सब करके क्या करना चाहते हो? मेरा मन मुझे धिक्कारने लगा। ऊफ! मैंने इतने पाप किये हैं! ये सब मुझे कहाँ ले जाएंगे? (कंठावरोध) इन सब कुकर्मों के फलस्वरूप मेरी अंत में क्या हालत होगी?....मेरी नींद हराम हो गई। उन दो बडी बड़ी तेजस्वी आँखों ने मेरी आँखों की नींद छीन ली थी। मुझे चैन नहीं पड़ा। कब सुबह हो और मैं आश्रम में पहुँचु, बस इसी व्यग्रता में सारी रात बीती।.... (आँसु पोंछकर) घर से काफी दूर आश्रम, फिर भी मुझे लगा-मैं चेत सकता हूँ, अभी भी समय है। स्वामीजी ही मेरी मंझधार में पड़ी हुई जीवन नैया को सही रास्ता दे सकते हैं। इसी आशा ने मुझ डूबते को तिनके का सहारा दिया और मैंने सप्ताह में ३-४ रोज आश्रम में स्वामीजी के चरणों में जाने का नियम बना लिया। फिर तो आज मेरा एवं मेरे परिवार के सदस्यों का सादगी, सन्तोषपूर्ण एवं सात्विक जीवन आपके सामने है, वह आप जानते ही हैं। घर में आज बीड़ी, मांस, मदिरा, जुआ, सिनेमा-कोई भी, किसी भी प्रकार का व्यसन घर के किसी भी सदस्य में जाने अनजाने भी नहीं घुस सकता।"

श्री धर्मदासजी यह कहकर बैठ जाते हैं पर बैठते बैठते भी उनके अश्रुपूरित कृतज्ञतापूर्ण नेत्रों एवं भरे गले से कहे शब्दों

ने वातावरण को करूणापूर्ण एवं गंभीर बना दिया है।

श्री कृष्णभाई से इजाजत लेकर दूसरे भाई स्वामीजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने उठ खड़े होते हैं। लेखक को उनका पूर्व परिचय है। इनमें भी वे ही सभी दुर्व्यसन प्रचुर मात्रा में थे जो पहले वाले भक्त में थे बल्कि उससे भी अधिक, यानि ये इतने खतरनाक थे कि यदि आवश्यकता पड़े तो किसी को बिना टिकट यमलोक पहुँचाने में भी ये हिचकिचाते नहीं थे। इनसे बड़े बड़े गुण्डे काँपते थे। इनकी बहन ने इनको स्वामीजी के पास वैसे ही दर्शन करने जाने की प्रेरणा दी थी। एक बार इन्होंने कुछ श्रद्धा एवं कुछ अश्रद्धा से स्वामीजी को शीश नवाया था। परन्तु स्वामीजी के चरणों में जो एक बार आया वह खाली हाथ नहीं गया! अपनी आत्मोन्नति का कुछ न कुछ साधन उसे जाने अनजाने मिल ही जाता है।

कई बार लेखक ने स्वामीजी को कहते सुना है—एक संत (स्वामीजी के मित्र संत) कहा करते हैं 'शेर को दाढ़ में आया हुआ शिकार कदाचित् बच कर निकल भी जाय पर संत की नजर में आया हुआ व्यक्ति नहीं बच सकता (यानि संत उसपर कृपा करके उसे मोक्ष का भागी बना ही देते हैं।

दयालभाई भी आये थे अपनी ऐंठ लेकर स्वामीजी के दर्शन करने, पर उनको लगा कि स्वामीजी की पहली ही दृष्टि में उनकी ऐंठन कम हो रही है। उन्होंने स्वामीजी के सामने कह दिया 'अच्छी बात है, अब आप मना करते है तो मैं नहीं पीऊँगा।'

पर घर उनके एक मित्र ने बहुत बढ़िया मदिरा की बोतल स्पेशल उनके ही लिये भेजी हुई थी। उन्होंने अपनी आदत के अनुसार बोतल को मुँह से लगाया। परन्तु (उन्हीं के शब्दों में) —

"खबरदार! मत पी" कहीं से आवाज आई। मैंने इधर उधर देखा पर आसपास कोई नजर नहीं आया। मैं पुनः बोतल को मुँह के पास ले आया। परन्तु वही आवाज पुनः सुनाई पड़ी। समझ में नहीं आ रहा था कि यह आवाज कहाँ से आ रही है! बाहर से आ रही है कि अन्दर से, मेरे कान यह सुन रहे हैं कि मन! कहीं भ्रम तो नहीं है मेरा! पर क्या करूँ इतनी बढियाँ चीज! आज तो कम से कम, भले थोड़ी ही, पी लेता हू मैंने बोतल से मुंह लगाया। इस बार मुझे लगा जैसे अन्दर से सम्पूर्ण हृदय उबलकर कह रहा है—'मत पी, देख पछतायगा।' पर कुछ घूँट गले के नीचे उतर ही गए थे। अब मुझे स्मरण आने लगा—नहीं! नहीं!! वह स्वामीजी की ही आवाज थी, भले ही कहीं से आई हो। सबको धोखे में डालने वाला 'मैं' आज अपने मन के धोखे का शिकार हो गया था। रोज डेढ़ दो बोतल पीने वाला 'मैं' आज कुछ घूँट भी हजम नहीं कर सका। सम्पूर्ण शरीर मेरा उल्टी पेट-दर्द और दस्तों से आन्दोलित हो उठा। कइयों को दारूण कष्ट देने वाला मैं उस कष्ट को सहन नहीं कर पा रहा था। रात भर जो भुगता वह मेरा मन ही जानता है। रात्रि के २ बजे मैंने स्वामीजी के फोटो के आगे रो-रोकर माफी

मांगो, तब दर्द कुछ हल्का पड़ा और थोड़ा चैन मिला। उसके बाद तो स्वामीजी के चरणों में आकर मैंने खूब पश्चाताप किया। यह स्वामीजी के आशीर्वाद का ही परिणाम है कि मेरे जैसा पतित, बदमाश और गुंडा व्यक्ति, सभ्य समाज की नैतिकता से, भगवान से कोसों दूर भागने वाला व्यक्ति आज आपके सामने परमेश्वर प्राप्ति के पंथ के पथिक के रूप में खड़ा है। आज भी उस रात्रि के कष्ट का स्मरण आता है तो सोचता हूँ कि ऐसे जीवन की ओर धकेलने वाला वह कष्ट अभिशाप नहीं था, वरदान ही था।

यह कहकर दयाल भाई भी स्वामीजी के आसन को लक्ष्य कर प्रणाम करके बैठ गए।

अब एक अन्य भक्त खड़े होकर कृष्णभाई से दो शब्द निवेदन करने की अनुमति मांग रहे हैं। इनके चेहरे पर घनी दाड़ी है और चेहरे पर बहुत भोलापन झलक रहा है। पर लेखक जानता है कि एक समय ये भी शहर के नामी बदमाशों में अग्रणी थे। अपने सामने आये किसी भी व्यक्ति को चाहे वह सज्जन हो कि दुर्जन, ये परवाह नहीं करते थे और आवश्यकता पड़ती तो उसको ठिकाने भी लगा देते थे। मनुष्य के जीवन का इनके सामने कोई मूल्य नहीं था। एक बार ये पता नहीं अपने किस जन्म के कर्म से प्रेरित होकर स्वामीजी के सत्संग में पहुँच गए और (आगे इन्हीं के शब्दो में)–

"ले, दूध पी ले!" ऐसा कहकर मैंने एक बड़ा दूध का गिलास मंच पर सफेद चादर ओढ़े बैठे हुए दाढ़ी वाले बाबा के सामने ढीठतापूर्वक रख दिया। सोचा, अपने से और तो कुछ नहीं होता इतना तो पुण्य करें, पर "चुप रह! यहाँ बैठ जा और सत्संग सुन। शोर मत कर।" मेरे से भी अधिक रौबदार एवं अधिकारपूर्ण वाणी में प्रत्युत्तर सुनाई दिया बाबा का। सुनकर मैं तो दंग रह गया! आज तक मेरे मुंह पर ही मेरी बात काटने का साहस किसी ने नहीं किया था, क्योंकि मैं इतना बदमाश और गुण्डे के रूप में प्रसिद्ध था कि लोग मेरा सामना करते घबराते थे। पता नहीं उनकी वाणी में, उनके चेहरे पर कौनसा तेज था कि पुनः उनके सामने बोल नहीं सका और चुप-चाप बैठे-बैठे पूरा सत्संग सुना। उसके पश्चात तो आप जानते ही हैं कि मैंने आज सारी बुराइयाँ छोड दी हैं। पूर्व किये गए कुकर्मों के प्रायश्चित–स्वरूप आज आप सबकी एवं आश्रम की कोई भी सेवा करने में मुझे बहुत आनन्द का अनुभव होता है। मुझे एक तरह से पुनर्जन्म मिला है। यदि समय पर स्वामीजी का आशीर्वाद नहीं मिलता, उनकी कृपा दृष्टि नहीं होती मुझ पर तो न जाने आज तक मैं अपने जीवन को कितने पतन के गढ़े में धकेल चुका होता।

लेखक यह सब सुनकर विचार करने लगा कि स्वामीजी के सहज जीवन से कितने लोग प्रेरणा लेकर अपने जीवन का उत्थान करते हैं? उसे ये घटनाएं सुनकर भगवान बुद्धदेव के जीवन का

प्रसंग याद आ जाता है। भगवान बुद्ध जब एक जङ्गल से गुजरते हैं तो लोग उन्हें मना करके कहते हैं—भगवन ! इस रास्ते से मत जाओ। इधर अगुंलीमाल नाम का एक डाकू रहता है जो किसी भी जाने वाले अनजान व्यक्ति की हत्या करके उसकी अंगुली काट कर माला में पिरो देता है। ऐसी एक सौ अंगुलियों की उसे किसी अनुष्ठान में जरुरत है। पर भगवान बुद्ध उधर से ही जाते हैं। वही भयंकर हत्यारा डाकू उनको रास्ते में मिलता है, लेकिन बुद्ध देव के तपोबल से चमत्कृत होकर वह उनके पैरों पर गिर पडता है। उसका भी उद्धार हो जाता है।

आखिर ऐसा क्यों होता है ? समाज की चोरी, डकैती क्रूरता, अनैतिकता के रोगों का उपचार जो बड़े बड़े डाक्टर, बड़े बड़े मनोवैज्ञानिक भी नहीं कर पाते हैं, ज्यों ज्यों दवा की त्यों त्यों मर्ज बढ़ता ही गया कहावत के अनुसार जिनके सुधार के नाम पर बिगाड़ ही होता है, ऐसे रोगों का इलाज ऐसे संत जो संसार का समस्त वैभव छोड़कर लंगोटी और कोपीनधारी बनकर कैसे कर जाते हैं। वे कौनसी वस्तु के मालिक होते हैं कि जिसके कारण समाज की सभी व्याधियों से ग्रसित क्रूर व्यक्ति भी बिना हथियार वाले उन संतों के सामने अपने हथियार टेक देते हैं, अपनी क्रूरता भूल जाते हैं और ईश्वर के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं। उनके पास कौनसा ऐसा धन होता है कि जिसके लिये बड़ी बड़ी मिलों के मालिक, बड़े बड़े धनपति भी आश्रमों के सम्मुख अपनी गाड़ियाँ खड़ी करके घंटों उनके दर्शनों के इन्तजार

में बैठे रहते हैं। उनके पास कौनसी ऐसी करामातें होती हैं कि जिसके कारण घर, बंगला, कारें व ऐशो-आराम के समस्त साधन होते हुए भी व्यक्ति दुःखी होकर स्वामीजी के चरणों में आकर कहते हैं—'मैं जीवन से तंग आ गया हूँ। स्वामीजी ! मुझे शांति नहीं है। मुझे सहारा दो, नहीं तो मुझे डर है कि मैं कुछ अनुचित न कर बैठूँ।' तो समाज के ऐसे दुःसाध्य रोगों का अचूक इलाज ऐसे कोपीनधारी संतों के पास ही है। फिर भी लेखक को अचरज होता है जब कुछ लोग यह कहते हुए पाये जाते हैं, 'साधु संत समाज पर भार हैं। वे समाज के लिये कुछ नहीं करते।' एक बार तो एक व्यक्ति ने स्वामीजी के ऊपर भी टीका टिप्पणी कर दी कि ये स्वामीजी शराब बनाने वाले कुछ लोगों से साझीदारी रखते हैं। उनकी आय में इनका भी भाग होता है। ये सिगरेट भी पीते हैं। और जोर शोर से इस बात का कुप्रचार भी उसने समाज में करने का प्रयास किया था। कैसी उल्टी रीत है समाज की ? जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद करने का यह प्रयास है ! जिनके सहारे समाज की सुव्यवस्था का ढाँचा खड़ा है उन्हों के बारे में इस प्रकार के कुप्रचार करने के प्रयास ! शिव ! शिव !! इतना होते हुए भी संतों के विशाल हृदय की थाह किसी ने पाई है क्या ? इस कुप्रचार का उल्लेख जब लेखक ने स्वामीजी के सामने किया तो उन्होंने मुस्करा कर केवल इतना ही कहा—अरे, तुम क्यों चिन्ता करते हो ? भगवान की लीला ही ऐसी है। जहाँ सत्कार्य का प्रचार-प्रसार होता है वहाँ कुछ न कुछ निन्दा

भी होती ही है। भगवान उसका भी भला करे। पर मुझे डर है कि उसका कुछ अशुभ न हो जाय, क्योंकि मेरी शुभ कामना उसके साथ होते हुए भी प्रकृति ऐसा कर्म करने वालों को छोड़ती नहीं ऐसा इसलिये कि भगवान अपने स्वयं के प्रति किये गए अपराध को तो क्षमा कर देते हैं परन्तु अपने भक्तों एवं संतों के प्रति किए गए उनके अपराध भगवान को सहन नहीं होते।

कबीर साहब कहते हैं–

कबीरा तेरी झोपडी, गलकट्टे के पास।
करेगा सो भरेगा, तू क्यों होत उदास ॥

फिर लेखक ने यही सोचकर संतोष किया कि राम थे तब भी निन्दक धोबी की उपस्थिति थी। कृष्ण थे तब भी शिशुपाल जैसों की उपस्थिति थी। दूर क्यों जाय, स्वामी विवेकानन्द का विदेशों में जब नाम हो रहा था तब इधर भारत में कुछ पादरी लोग उनके बारे में कुप्रचार कर रहे थे कि वे तो उधर अखाद्य पदार्थ खाते हैं, औरतों के घर ठहरते हैं आदि आदि। खैर, काबुल में क्या गधे नहीं होते!

विचार करें तो निन्दक भी बेचारे क्या करें? आज भगवा वेश में कई धोखेबाज लोग जिनकी आध्यात्मिक कोई कमाई नहीं की हुई है, तो भी साधु-संत बन बैठे हैं। आटे के साथ घुन पिसता ही है, वैसे ही कभी कभी ढोंगी संतों के साथ सच्चे संत भी निंदा के भागी बन जाते हैं। इससे सच्चे संतों का महत्व घटता नहीं है।

एक बार यहाँ आश्रम में कुछ राजसेवक आये थे। वे गुजरात के संतों के बारे में कोई बड़ा ग्रन्थ बनाने वाले हैं। उन्होंने भी यही प्रश्न किया था, 'स्वामीजी! आपका समाज के उत्थान में क्या सहयोग रहता है?' लेखक सोचता है-वे यदि इस अभी की सत्संग सभा में होते तो शायद उनको यह प्रश्न पूछने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

लेखक और भी कुछ सोचता, यदि नाथाभाई खड़े नहीं होते तो। नाथाभाई पहले पाटण तालुका के विधायक (M.L.A.) थे। इस बार ये पहली बार ध्यान-शिविर में आए हैं। वे कहने लगे- हम लोग अपनी इन्द्रियों एवं मन तक ही सीमित रहते हैं। उनके आगे हमारी दौड़ नहीं है। पर उसके आगे भी सत्ता है। उसका परिचय हमें सद्‌गुरु ही करा सकते हैं। गुरुजी को हम स्थूल शरीर ही मानकर रह गए तो धोखे में रह जाएंगे। हमें गुरु तत्त्व को पहचान कर प्रेरणा लेनी होगी। जब हम यहाँ से जाएंगे तो हमारे ऊपर घर का वातावरण पुनः हावि हो जायगा। हमें इससे सतर्क रहना हैं और पुनः समय समय पर यहाँ आकर अपने को ध्यान (योग साधना) में आगे बढ़ाना चाहिये।

अब कृष्णभाई का इशारा पाकर लेखक बोलने के लिये खड़ा हुआ। वह कहने लगा–

मैंने १९६४ में बी० ए० पास किया और अपनी रुचि के अनुसार एक सामाजिक संस्था में कार्य करना शुरु कर दिया। आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी रुचि के कारण मैंने स्वामी

विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का खूब साहित्य पढ़ा, परन्तु उसका वास्तविक अर्थ स्वामीजी के चरणों में आने के बाद अब मुझे समझ में आ रहा है। जब तत्ववेत्ता प्रत्यक्ष अपने में अनुभव की हुई बात बताते हैं, तब उसमें शंका को कोई गुंजाईश नहीं रहती। उसका सीधा हृदय पर प्रभाव होता है। वह कण्ठस्थ ही नहीं हृदयंगम हो जाती है।

मुझे यह पता था कि यदि किसी व्यक्ति को कोई योग्य गुरु मिल जाय तो वह भटक नहीं सकता। इसलिए मैं भी चाहता था कि मुझे कोई मिले ऐसा तत्वज्ञानी महापुरुष, लेकिन मैं सफल नहीं हो पा रहा था। प्रारब्ध वश न चाहते हुए भी मुझे गृहस्थी बनना पड़ा और मुझे अहमदाबाद में आना पड़ा। एक दिन मैं किसी के साथ इस आश्रम में आया परन्तु स्वामीजी के दर्शन उस दिन नहीं हुए। जब दूसरी बार मैं आया तब मुझे १०-१५ मिनट में ही स्वामीजी के दर्शन हो गए। मैंने श्रद्धापूर्वक फलों की भेंट उनके सामने चरणों में रखी और सिर उठाकर ऊपर देखा तो मुझ को बड़ा संतोष होने लगा। मैंने देखा स्वामीजी का तेजपूर्ण ऊँचा व चौडा मस्तक, बड़ी मधुर दृष्टिवाली बड़ी बड़ी योग शक्ति से पूर्ण आँखे, युवा दाढ़ी न बहुत लम्बी न बहुत छोटी और माथे पर कुण्डलाकार श्याम वर्ण बाल। स्वामीजी सफ़ेद चादर ओढ़े हुए थे। मुझे स्वामी विवेकानन्द का चित्र स्मरण हो आया। मुझे लगा कि अब मुझे भटकना नहीं पड़ेगा। जिस स्थान एवं इष्ट की खोज में मैं था शायद मैं उस जगह पहुँच गया हूँ। 'अपनी वृत्तियों में

संन्यास चाहिए, वस्त्रों में हो या नहीं उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। यदि वस्त्र भगवा हो और मन संसार की रंगीनियों में भटक रहा हो तो वह संन्यासी नहीं है। वह तो गृहस्थ से भी बदतर है।' किसी महापुरुष के कहे ये शब्द मुझे स्वामीजी का श्वेत वस्त्रों में देखकर स्मरण हो आए। राजा जनक गृहस्थ थे पर कर्ता और भोक्तापन से ऊपर उठे हुए ज्ञानी महापुरुष थे। अतः उन्हें 'विदेह' कहा जाता है। अब मुझे महसूस होने लगा कि मैं सच्चे तत्ववेत्ता की शरण में आ गया हूँ। यहाँ धोखे की गुंजाईश नहीं है। यहाँ मुझे निराश नहीं होना पड़ेगा। यहाँ मुझे उस इष्ट की प्राप्ति हो ही जायगी जिसको प्राप्त करने के बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रहता है। स्वामीजी मुझे सर्व रूप से समर्थ गुरु जान पड़े और मन ही मन में उसी दिन मैंने गुरु रूप में धारण भी कर लिया, भले, स्वामीजी को उसकी जानकारी भी हो या न हो। एकलव्य ने भी तो ऐसा ही किया था। उसके बाद कई बार आश्रम की ओर हठात् मेरे पैर बढ़ने लगे। अब तो मेरा सौभाग्य है कि स्वामीजी के चरणों में ही सेवा का मौका मुझे मिला हुआ है।

अब डीसा के श्री शंकरभाई खड़े होते हैं। शंकरभाई बड़े सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि इनको स्वामीजी के साथ काफी रहने का मौका मिला है। वे कहते हैं—

स्वामीजी डीसा में करीब दो चार वर्ष रहे थे, पर मैं काफी समय बाद उनके सम्पर्क में आ सका। मैं किसी भी साधु आदि के पास नहीं जाता था। मेरी माँ कई बार कहती थी कि 'चलो

स्वामीजी के पास' परन्तु मैं ध्यान ही नहीं देता था। मेरी आसन सीखने की बहुत रुचि थी। माताजो ने इसी बहाने कि 'चलो वहाँ आसन सीखना' एक बार स्वामीजी के चरणों में मुझे भेज ही दिया। वहाँ जानेके बाद तो पता नहीं स्वामीजी ने जैसे कोई जादू ही कर दिया हो, मुझे उनके बिना चैन ही नहीं पड़ता है। अब तो स्वास्थ्य भी अच्छा हो गया है। शायद यह मेरे पूर्वजन्म के पुण्यों का ही प्रताप है कि जिन स्वामीजी के दर्शन भी कई लोगों को दुर्लभ होते हैं, उनके साथ मुझे गंगोत्री, हरिद्वार, उत्तर-काशी, टिहरी गढ़वाल आदि तीर्थक्षेत्रों में यत्किंचित निवास एवं साधना करने का अवसर मिला और कई आश्रम देखे। आज पग पग पर मुझे पूज्य श्री का मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद मिलता है, यह मेरा परम सौभाग्य ही है।

अब श्री शिवलाल काका अपना अनुभव बताते हैं। काका बड़े विनोदी स्वभाव के हैं और स्वामीजी के बहुत नज़दीक रहे हैं। उनके खड़े होते ही सभी हँसने लग जाते हैं, फिर भी हँसी के बीच वे कहना प्रारम्भ करते हैं—

परमपूज्य बापू के साथ रहकर मैंने इतने अनुभव किये हैं और इतने चमत्कार देखे हैं कि यदि वर्णन करने बैठूँ तो यहीं सुबह के चार बज जावें। जो मुझे स्मरण आते हैं उनमें से कुछ प्रसंग संक्षेप में बताता हूँ—

सन् १९७४ का अक्टूबर महीना था। स्वामीजी उस रात को अहमदाबाद से बीकानेर जा रहे थे। मैं एवं अन्य सैकड़ों भक्त

पालनपुर रेल्वे स्टेशन पर खड़े चिन्ता कर रहे थे कि स्वामीजी को हम कैसे ढूँढेंगे, क्योंकि सर्वत्र बिजली बन्द थी। परन्तु पहला आश्चर्य तो हम सबने देखा कि ज्योंही स्वामीजी की गाड़ी स्टेशन में प्रवेश करने लगी उसी समय एकदम सर्वत्र बिजली के बल्बों के प्रकाश से स्टेशन जगमगा उठा। सभी के हृदय में आनन्द की लहर छा गई। हम आसपास के इलाकों से सैकड़ों की संख्या में आए हुए दर्शनार्थियों से स्टेशन इतना खचाखच भरा हुआ था कि कहीं तिल रखने को भी जगह नहीं थी। गाड़ी आने से चारों ओर बड़ी चहल पहल मच गई और 'सद्गुरु देव की जय' के गगनभेदी जयनाद से सारा वातावरण गूँज उठा। स्वामीजी ने दर्शनार्थियों द्वारा लाए हुए फल-फूल आदि प्रसाद उन्हीं में प्रेम-पूर्वक बांटना शुरु कर दिया। प्रसाद कुछ ही लोगों को मिल पाया था कि एकाएक इंजिन ने व्हिसल दी और गाड़ी चल पड़ी। सारे दर्शनार्थी श्रद्धा एवं निराशा की आँखों से स्वामीजी की तरफ देखते हुए उनके डिब्बे के साथ साथ दौड़ने लगे। संतों की लीला निराली होती है। उसे हम लोग अपनी सामान्य बुद्धि से नहीं समझ सकते। सभी दर्शनार्थी निराश होकर चलती हुई गाड़ी की ओर ताक ही रहे थे कि थोड़ी दूर चलकर एकाएक गाड़ी रुक गई। पुनः सबके हृदय में हर्ष की लहर दौड़ गई। अब सबने स्वामीजी के डिब्बे के पास जाकर श्रद्धापूर्वक शांति से दर्शन व फूलहार किये और प्रसाद पाया। पूज्यश्री के मुखारविन्द से आधा घण्टा करीब अमृत-वचन सुनने का भी सबको सौभाग्य मिला। इसके बाद रेल्वे के टी० टी० व गार्ड आदि ने आकर स्वामीजी से श्रद्धापूर्वक नम्र

प्रार्थना की कि कृपा करके अब गाड़ी को चलने की आज्ञा दें। पूज्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा– "देखो, हमने तो गाड़ी की जंजोर आदि नहीं खींची है, न हम आपको गाड़ी चलाने से रोक रहे हैं।" तो टी० टो० आदि ने कहा– "नहीं स्वामोजी! आपकी लोला से हो चलतो हुई गाड़ी एकाएक रुक गई है। संत महात्मा जंजीर नहीं खींचते, परन्तु सब जंजोरों की चाबी उन्हीं के हाथ में होतो है। अब कृपा करें और हमें गाड़ी चलाने की आज्ञा दें।" स्वामोजो ने मुस्कराकर सत्संगियों पर एक मीठी नजर डाली और कहा–'भाई अब तो इमें जाने दो न?' तब सत्संगियों ने सद्गुरुदेव को जय जयकार करते हुए पवित्र भाव भीने हृदय से स्वामोजी और गाडी को विदादी। उन सबका एक साथ हाथ उठाना और गाड़ो का चल पड़ना, स्वामोजी को ऐसी लोला लग रही थी मानो गाड़ी के चलने की चाबी स्वामी जी ने सत्संगियों के हाथ में दे रखी हो। फिर तो आगे आने वाले छोटे मोटे सभी स्टेशनों पर रेल्वे के कितने ही अधिकारी व अन्य यात्री लोग पूज्य श्री के दर्शन व उनसे महाप्रसाद पाकर अपने को धन्य धन्य मानने लगे; यह दृश्य भो साथ में जाने से मुझे देखने को मिला।

थोड़ी देर के लिए शिवलाल काका बोलते बोलते रुक जातेहैं।

यह सब सुनकर लेखक सोचने लगा है–धन्य हैं ऐसे महा पुरुष जिनके संकल्प मात्र से जड़ वस्तुएँ भी अपना स्वभाव छोड़ कर उनकी आज्ञा में कार्य करने लगती हैं तो चेतन स्वरूप मनुष्य उनकी कृपा से अपनो बुराइयाँ छोड़कर तत्त्वनिष्ठ हो जाय तो उसमें क्या आश्चर्य है!

पुनः शिवलाल बोलना प्रारम्भ करते हैं–

शिवलाल—ऐसा हो एक प्रसंग अजमेर का है। हम तीन चार भक्त स्वामीजी के साथ कार द्वारा पुष्कर से अजमेर आ रहे थे। भोजन आदि बनाने का काम मेरे जिम्मे था। अब शाम हो गई थी और मुझे मालुम था कि कुटिया पर पहुँचेंगे तो सब्जी तो बिल्कुल वहाँ है ही नहीं। आज क्या स्वामीजी को बिना सब्जो का ही भोजन मुझे कराना पड़ेगा! इसो चिंता में बैठा मैं सोच रहा था कि रास्ते में कहीं सब्जो की दुकान आएगी तो गाड़ी खड़ो करवाकर सब्जी ले लूंगा। पर उसो वक्त स्वामीजी ने मेरी ओर देखकर कहा–'क्या चिन्ता करता है? अब कहीं नहीं रुकना है। सीधे कुटिया पर चलो। वहाँ बहुत सारी सब्जो रखी हुई है।' मैं तो यह सुनकर दंग रह गया! विचार करने लगा कि स्वामोजी ने मेरे मन को बात कैसे जान ली? वास्तव में जब हम सब कुटिया पर पहुँचे तो वहाँ कई प्रकार को सब्जियों व रसोई की अन्य सामग्रियों का ढ़ेर पड़ा हुआ था और कुछ भक्त लोग स्वामीजो के दर्शनार्थ वहाँ बैठे हुए थे। मैं तो यह सब देखकर दंग रह गया! ऐसे अनेक प्रसंग स्वामीजी के साथ रहकर मैंने देखे हैं। संतों को सेवा में प्रकृति प्रत्येक पल हाजिर रहती है ऐसा मुझे कई प्रसंगों में प्रत्यक्ष देखने को मिला।

शिवलाल काका और भो कुछ बोलने को थे कि इतने में स्वामीजी पधार गए। सभी खड़े होकर एक साथ जय जयकार कर उठे।

'सद्गुरु देव की जय'

स्वामीजी (अपने आसन पर विराज़ कर)—आप लोग मेरे को इतनी देर से क्या क्या (विनोद में) गालियाँ दे रहे थे, बोलो ? मैं भगवान की कसम खाकर कहता हूँ कि मैंने कुछ नहीं किया है। मैं कभी कुछ नहीं करता हूँ। ज़ो कुछ आपको लाभ हुआ है एवं हो रहा है, वह आपके पुण्य कर्मों का ही फल है।

लेखक सोचने लगा वास्तव में बात भी स्वामीजी की ठीक ही है। तत्व ज्ञानी महापुरुष कभी कुछ करते नहीं हैं। वे तो कर्त्ता व भोक्तापन से ऊपर उठे हुए होते हैं। उनकी तो उपस्थिति मात्र ही पर्याप्त होती है। जैसे सूर्य को उदय होने के बाद किसी को प्रकाश या धूप देनी नहीं पडती है। वह तो उसकी उपस्थिति मात्र से सबको सहज उपलब्ध है।

स्वामीजी– (कृष्णभाई से) देखो, कृष्णभाई आप इतनी देर से सबको बुलवा रहे हो और आप स्वयं कुछ बोल ही नहीं रहे। घड़ी में रात का पौना बज गया है। अब आप उठकर समारोप कर दो।

कृष्ण भाई–(खड़े होकर) स्वामीजी की उपस्थिति में अब स्वामीजी के बारे में बोलना बड़ा विचित्र लग रहा है। मैं इतना ही कहूँगा कि बड़े बड़े विद्वान संतों एवं मठाधीशों के पास मैं गया परंतु मुझे वह वस्तु नहीं मिली जो यहाँ आकर मिली है। मै समझता हूँ कि मेरे कुछ पुण्य ही अधिक होंगे कि मैं भटक कर भी आखिर सही जगह पर पहुँच गया हूँ। मैं स्वामीजी के चरणों में रहकर गहरे अनुभवों के पश्चात् यह बात कह रहा हूँ।

अब कृष्णभाई बैठ जाते हैं। पूज्य श्री थोडी देर आँखे मूंदे ध्यानावस्थित रहते हैं। फिर धीरे धीरे अपनी भावभीनी स्नेहपूर्ण वाणी में बोलते हैं--

स्वामीजी- कोई पतित नहीं है। हम अपने आपको पहचानें। ईश्वरों का ईश्वर तुम्हारा अपना ही आत्मा है। महापुरुष तो तुम्हारे ही अन्दर की आत्मशक्ति को जगाते हैं। आज शिविर का तीसरा दिवस पूरा हो रहा है। उत्तरायण के इन तीन दिनों में आप सबने इस आश्रम की तपोभूमि में योग साधना की है। यह समझो कि आपके जीवन के ये तीन दिन बड़े भाग्यशाली हैं क्योंकि इन दिनों की साधना आप सबको अपने दिव्य ध्येय 'आत्मसाक्षात्कार' की तरफ आगे बढ़ाने में बहुत मदद रूप बनेगी। जिस प्रकार बीज बो दिया जाय और बाद में उसको पानी, धूप एवं रक्षण न दिया जाय तो वह वृद्धिमान न होकर सूख जायगा, उसी प्रकार इन दिनों में हमने योग-साधना में जो प्रगति की है अब उसको पानी, हवा और प्रकाश देने की अत्यन्त आवश्यकता है। अर्थ यह है कि अब हम सब अपने अपने स्थानों पर जाकर साँसारिक व्यवहारों में लगेंगे अवश्य परन्तु इस प्रकार से लगे कि हमारी यह साधना निरन्तर वृद्धिगत होती रहे, इसमें अवरोध न हो। किसीभी प्रकार की जीवन में कठिनाईयाँ आवें परन्तु हम उनमें अपने आनन्दमय आत्म-स्वरूप को न भूलें और जल में कमलवत निर्लिप्त होकर संसार के सारे व्यवहार करते रहें।

ॐ ॐ ॐ

"इस बालक को आप सामान्य पुत्र रूप में नहीं समझें। यह बालक भविष्य में महान संत बनकर कई लोगों को जन्म जन्मांतर के कष्टों से छुड़ाएगा।" ये शब्द उस ३ वर्ष के बालक-'आसुमल' को देखकर उसके पिता सेठ श्री थाउमल को उनके कुलगुरु ने कहे थे। आज से लगभग ३३ वर्ष पूर्व सिंध प्रांत के मीरपुर खास जिला के बेराणी गाँव में धार्मिक एवं श्रीमंत सेठ श्री थाउमल के घर में एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ था, जिसका नाम आसुमल रखा गया। बालक के बारे में की गई भविष्यवाणी समय आने पर सत्य सिद्ध हुई और आबू एवं हिमालय की गुफाओं में तथा नर्मदा के किनारे सात वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात् आत्मसाक्षात्कार करके बचपन के वही आसुमल अब परमपुज्य संत श्री आशारामजी महाराज के नाम से साबरमती नदी के किनारे, मोटेरा गाँव के पास में एक आश्रम में आए हुए भक्तों को पिछले तीन वर्षों से वैदिक तत्त्वज्ञान का उपदेश करते हुए नजर आ रहे हैं।

पूज्य स्वामीजी लोगों के शारीरिक मानसिक और अध्यात्मिक विकास में सहयोग देने वाले योग, आसन, प्राणायाम, ध्यान और वेदांत पर सत्संग के कार्यक्रम द्वारा समाज जीवन में कायापलट कर रहे हैं। उनके चेहरे पर झलकता दिव्य तेज और वेदांत जैसे विषय पर उनका अधिकार, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ की याद दिला देते हैं। उनके ही मुखारविन्द से भक्तों के सम्मुख सहज प्रसृत वाणी के कुछ अंशों को यहाँ लिपिबद्ध किया गया है, ताकि अधिकाधिक लोग लाभ उठा सकें।

निवेदक- श्रीयोग वेदांत सेवा समिति।